सभा० १

ॐ

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

भक्ति

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

आश्विन सम्वत् १९८३ ॥

विषय सूचि ।

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
१. मंगलाचरणम् ।	१	६. स्त्री जाति का उद्धार कैसे हो । ले० श्री भगत राम फिरोजपुर	१६
२. भक्ति ।	४	७. दीपन पाचनादि गुणोंके लक्षण ।	२४
३. मिश्रित उपदेश ।	६	८. भक्त के लक्षण ।	२५
४. वृत्तों की उपादेयता । ले० पं० किशोरी लाल जी बजपेयी	६	९. उपासना ।	२६
५. शाश्वत जीवन । ले० राम चन्द्र जी जज एम० ए०	१७	१०. गुरु भक्ति । ले० श्रीमती सूरज देवी	३१

नारद मुनि मेरे भक्तों (सन्तों) से अन्तर नाहीं ॥ टेक ॥

सन्त चलें पीछे उठ चालूं मोहे सन्तन की आशा ।
जहां मेरे साधो भजन करें हैं वही हमारा वासा ॥ १ ॥
सन्त जीमें जहां भोजन जीमूं सन्त सोवें तहां सोऊं ।
जो कोई मेरा सन्त सतावे लाख जतन कर खोऊं ॥ २ ॥
लक्ष्मी मेरी अर्ध शरीरी सो सन्तन की दासी ।
अठसठ तीर्थ सन्तों चरणा कोटि गये और काशी ॥ ३ ॥
मन कर्म वचन चरण चित लावे सोई परम पद पावे ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो हरि अपने मुख गावे ॥ ४ ॥

ॐ

"कैलातु केवला भक्तिः" ।

वार्षिक मूल्य २)

भक्ति

एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली मासिक पत्रिका ।

वर्ष १] भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा, आश्विन शुक्ल पक्ष विजया दशमी सं० १९८३ [अङ्क १

॥ मंगलाचरणम् ॥

गजाननं भूतं गणाधिसेवितं, कपित्थ जम्बु फल चारु भक्षणम् ।
उमा सुतं शोक विनाश कारकं, नमामि विघ्नेश्वर पाद पंकजम् ॥

गजानन, भूतादि गणों करके सेवित कैथ जामुन आदि फलों के भक्षण करने वाले शोकादि को नष्ट करने वाले पार्वती के पुत्र गणेश जी के चरण कमलों में प्रणाम करता हूं ॥

कृष्ण त्वदीय पद पंकज पञ्जरान्ते, अद्यैव मेविशतु मानस राज हंस ।
प्राण प्रयाण समये कफवातपित्तैः, कण्ठावरोधन विधौ स्मरणं कुतस्ते ॥

हे कृष्ण ! आप के चरणरूपी कमलों में मेरा मन रूपी राज हंस अभी प्रवेश करजाय प्राणों के प्रयाण करने के समय जब कफ, वात पित्त करके कण्ठ रुक जायगा तब तेरा वह स्मरण कहां हो सकेगा ?

रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारे, पारं गमिष्यसि यतो भव सागरस्य ।
पुत्राकलत्र सुहृदो न हि ते सहाया, सर्वं विलोकय सखे मृग तृष्णकाभम् ॥

हे चित्त ! मुरारी के चरण कमलों का स्मरण कर जिस से भवसागर से पार होगा हे सखे पुत्र स्त्री और मित्र यह तेरे सहायक नहीं हैं इन को मृग तृष्णा के जल के समान जान ॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे, भवं भवानी सहितं नमामि ॥

कपूर के सदृश श्वेत वर्ण, करुणा के अवतार, संसार के सार, वासुकी आदिक सर्पों का हार धारण करने वाले, सदा हृदयरूपी कमल में बसने वाले शिव जी को भवानी सहित नमस्कार करता हूं ॥

करारविन्देन पदारविन्दं, मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं, बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

जो चरण कमल के अंगुष्ठ को कर कमलसे मुखारविन्द में स्थापन किये हुए बट के पत्रपर की पुट पर शयन करने वाले हैं उन बालमुकन्द को मन से स्मरण करता हूं ॥

ध्यानाभ्यास वशीकृतेन मनना तन्निर्गुणं निष्क्रियं ।
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि पर पश्यन्तु पश्यन्तु ते ॥
अस्माकं तु तदेव लोचन चमत्कारापभूयाच्चिरं ।
कालिन्दी पुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं तमोधावति ॥

योगी ध्यान के अभ्यास से वश में हुए मन से गुण रहित क्रिया रहित तेजोमूर्ति परब्रह्म को देखते हों तो भले ही देखते रहें। परन्तु यमुना के किनारों पर अनिर्वचनीय श्याम वर्ण की जो तमो मूर्ति दौड़ा करती है वह श्याम मूर्ति चिरकाल तक हमारे नेत्रों को अवधि रहित आनन्द देती रहे ॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं शुरेशं ।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ॥
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ।

शान्त आकृति वाले, सर्पों की शय्या पर शयन करने वाले देवताओं के ईश्वर, विश्व के

आधारभूत, आकाश की समान अलिप्त, मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, कल्याण मय अङ्गों वाले, लक्ष्मी के स्वामी, कमल के समान नेत्र वाले, योगियों के ध्यान में आने वाले, भव भय को दूर करने वाले, और सब लोकों केएक मात्र स्वामी विष्णु की मैं वन्दना करता हूं ॥

हे कृष्ण कृष्ण भगवन् मम चित्तभृंगो ॥
यायात् कदापि भवत श्चरणर्विन्दे ।
गेहादि पुष्प निरतः कृपया तदा त्व ॥
मीलस्व चन्द्रनयनेननिजं पदाब्जम् ।

हे कृष्ण ! गेहादि पुष्पों में निरत मेरा चित्त रूपी भ्रमर यदि आप के चरण रूपी कमल में कभी प्रवेश करे तो हे भगवन् ! आप अपने पद रूपी कमल को चंद्र रूपी नयन की भान्ति देखें अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा को देख कर कमल बन्द हो जाते हैं इसी प्रकार मेरा मन भी वहीं रह जाय ॥

येषां श्री मद्यशोदा सुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां ॥
येषा माभीर कन्या प्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा ।
येषां श्री कृष्ण लीलाललित रस कथा सादरौ नैव कर्णौं ॥
धिक् तान् धिक् तान् धिगेतान् कथयति सततं कीर्त्तनस्थो मृदङ्गः ।

जिन मनुष्यों की यशोदा के पुत्र श्री कृष्ण भगवान् में भक्ति नहीं है, जिन की आभीरों की कन्यायों के (गोपियों) प्रिय गुण कथन में जिह्वा रक्त नहीं है, जिन के कर्णों में श्री कृष्ण की लीला से शोभायमान जो कथा भागवत है वह नहीं प्रविष्ट हुई है उन को कीर्त्तन करता हुवा मृदंग निरन्तर कहता है कि धिक्कार है ! धिक्कार है !! धिक्कार है !!! ॥

या त्वरा द्रौपदी त्राणे या त्वरा गज रक्षणे ।
मय्यार्त्ते करुणासिन्धो सा त्वरा क्व गतातव ॥

हे करुणा सिन्धो ! जो शीघ्रता आपने द्रौपदी की सहायता करने में कीथी, जो शीघ्रता आप ने गज का रक्षा करने में की थी वह आप की शीघ्रता मुझ आर्त्त के लिये कहां गई ?

पशूनांपतिं पापनाशं परेशं , गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूट मध्ये स्फुरद गांग वारिं , महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि ॥

प्राणियों के पति, पाप के नाश कर्त्ता, परमेश्वर व्याघ्र चर्मधारी, सब के प्रार्थनीय जिन की जटा जूट के मध्य में गंगा जी स्फुरण कर रही है ऐसे एक महादेव का मैं स्मरण करता हूं ।

भक्ति ।

श्री गुरु परमानन्दं वन्दे स्वानन्द विग्रहम् ।
यस्य सानिध्य मात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥

यह जीवात्मा जब अपने निजानन्द में स्थित होता है तो उस अवस्था में जिस आनन्द का यह अनुभव करता है उसके लिये वेद कहता है कि वह अवर्णनीय और अचिन्त्य है और जब वह अपने केन्द्र स्थान से भटक जाता है तो उसकी दशा प्रत्यक्ष में अत्यन्त शोचनीय होती है उसको किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिलती, मृग-तृष्णा की भान्ति जस जड़ पदार्थकी बाह्य चमक दमक पर लालयित होकर और अपने उत्साह का संयम करके वह उसको पकड़ने दौड़ता है वहां ही से उसे क्षण भर में निराशा और दुःख का प्रसाद मिलता है क्यों कि जो भी कर्म्म वह अपने मन के वशीभूत होकर करता है उसका फल सिवाय दुःख के और क्या होसकता है ? यह साधारण बात है कि इसका प्रत्येक मनुष्य को अनुभव है कि मन के अनुकूल काम को चिन्तन करने में, उसके अनुकूल कर्म्म करने में और अन्त में उसका फल भोगने में दुःख ही दुःख है। मनका क्या है इसकी अद्भुत शक्ति है यह एक क्षण में जगत् की रचना करता है इसकी गति के साथ विद्युत की गति का कुछ भी मुकाबला नहीं हो सकता अब इस में विचारनेकी बात यह है कि इतनी शीघ्र गति होते हुए इसकी गति भी नीचेको है। ऊपरको नहीं है उसके लिए कबीर जी ने एक दोहे के एक पाद में कितना उचित और उत्तम कहा है:-

को ई करम फल में करै,
यह मन विषया स्वाद ।

ऐसे मनके चक्र से दुःखित और पिड़ित होता हुआ यह आत्मा अहर्निश अपने निजानन्द की तरफ जाने का उद्योग व प्रयत्न करता रहता है।

सन्सार के अनादि चक्र के साथ २ जीवों का यह प्रयत्न अनादि है और इसी प्रकार बना रहता है। जितने धर्म्म तुम्हारे देखने और सुनने में आए हैं वह सब ही उसी आनन्द की डिम डिमी पीटते हैं। प्रत्येक धार्मिक आचार्य यही घोषणा करता है कि मेरे पीछे चलने से तुम अपने निज घर में चले जावोगे। इस रहस्य का रूप पथक् २ होसकता है। परन्तु बात वही है आप चाहें जीवात्मा का अपने पिता परमा

त्मा से जा मिलना समझें या अपने आपका आपे में मिल जाना समझें। इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। हमारी बाह्य दृष्टि होने से हम रूप के भ्रममें पड़े हुए हैं वरना पिता और पुत्रमें भेद क्या है यदि बीज में और फली में भेद हो तो पिता और पुत्र में भी भेद होसकता है अन्यथा यह बुद्धि का आवरण ही तो है। उस आनन्द के लिए बहुत देह धारियों ने समय २ पर घोषणा की है कि वह कहते हैं हमने इस को पालिया है और जो हमारी आज्ञानुकूल मार्ग पर चलजायगा वह भी उसको प्राप्त कर लेगा। ऐसे देहधारी संसारी बन्धनों से बिल कुल स्वतंत्र, देश, काल और जाति की दीवारों से न बन्धे हुए अपने २ ढंग में पूर्ण विश्वास दिलाकर पथ प्रदर्शक की जुम्मेवारी लेकर बेधड़क कहते सुनाई देते रहे हैं कि "आओ मेरा दामन पकड़लो मैं तुमको निजस्थान में पहुंचा दूंगा"

इस शिक्षा को धर्म या दीन की शिक्षा का नाम दिया जाता है। इन सबका उद्देश समान ही होता है चाहे लक्ष और साधन में कितना ही भेद हो परन्तु इतना ही नहीं इसमें मुख्य साधन में भी कभी भेद नहीं होता वह अबभी है और भविष्य में भी रहेगा उसके बिना अन्य सब साधन बेकार हैं वह साधन है परं पावनी भक्ति। उस भक्ति की प्राप्ति श्रद्धा और विश्वाश से होती है और श्रद्धा और विश्वास गुरु आचार्य व भगवान की दया से होता है। भगवान् शंकराचार्य जी कहते हैं—

मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्ति रेवगरीयसि।

स्वयं आनन्द कन्द भगवान अपने प्यारे भक्त सखा अर्जुन को बड़े प्रेम से समझाते हैं।

मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजि मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः॥

मेरे मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मुझ को नमस्कार कर, मुझको ही प्राप्त होजावेगा। इस प्रकार अपने आप को मेरे परायण कर।

जो भक्ति अनिवार्य साधन है उस भक्ति के बिना आत्मा का विकाश होना असम्भव है और उस के हो जाने से उस परं प्रिय प्रीतम का पाना ही नहीं प्रत्येक, अवस्था में देश, काल की मर्यादा से ऊपर सब कालों और सब दशाओं में प्रत्यक्ष है। जैसा कि वह सब को मिला है। और तो क्या उस के लिए तो योनि काभी भेद नहीं है जैसा कि वह अपने भक्तों को मिला है।

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य चवयो
विद्या गजेन्द्रस्य का।
कुब्जायाः किमुनामरूपधिकं
किं तत्सुदाम्नो धनम्॥
वंशः को विदुरस्य यादव पते
रुग्रस्य किं पौरुषम्।
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणै
र्भक्ति प्रियो माधवः॥

ऐसी परं पावनी और सर्व व्यापिनी भक्ति की भक्ति करने के लिए भगवान की दया हुई है उस में हम आपको अपना भाई बनाना चाहते

है उसी के लिये प्रार्थना करते हैं। भगवान की भक्ति ही से बेड़ा पार होगा अन्य सब साधन तीनों कालों में बेकार हैं और कलियुग में तो एक मात्र भक्ति ही साधन है जैसा कहा है „कलौ तु केवला भक्तिः" उस भक्ति के दो साधन बताए हैं भजन और सेवा जैसा „भज सेवयां भक्तिः" उस कल्याण कारिणी भक्ति के लिये सूत्र रूप से कुछ पंक्तियां दी जाती हैं उन को हृदयङ्गं करलीजिये। इन को बार बार पढ़िए और हो सके तो कंठस्थ कर लीजिये और फिर विचार पूर्वक इस के अनुसार आचरण कीजिये निश्चय आप भक्ति मार्ग की तरफ आएंगे और आपकी आत्मा का विकाश होगा और अन्त में आप निजानन्द को प्राप्त होंगे।

भक्तिः—

भगवान् की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एक मुख्य साधन माना गया है, और सब साधन गौण माने गए हैं। और वास्तविक देखा जाय तो विदित भी यही होता है कि जब तक आत्मा परमात्मा के साथ एक न होजाय अर्थात् जब तक उस की इच्छा के आधीन न होजाय तब तक जीवन में कोई भी आनन्द नहीं। और अपनी वासना स्थूल हो या सूक्ष्म कोई भी नहीं रहनी चाहिए। केवल परमात्मा की इच्छा को परं इच्छा समझ कर उस को पालन करना और अपने मिथ्या अहंकार उस में विस्मरण करना ही आप्त पद या मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है। भगवत् को छोड़ किसी वस्तु का आश्रय न लेना परन्तु तन, मन और आत्मा को भगवत् से उत्पन्न हुए जान और उसी के आधार समझ उसी में लीन कर देना ही जीवन का लक्ष्य है। कोई कर्म करे वह भगवत् अर्पण हो, ऐसे भक्तियोग द्वारा व्यवहार और परमार्थ में कुछ अन्तर नहीं रहता। वह जीवन मुक्त हो जाता है।

मिश्रित उपदेश।

ओं पितानोऽसि पितानो बोधि।
नमस्तेऽस्तु मा मा हिꣳसीः॥
नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवे नमः।
बाहुभ्यां उतते नमः॥

पहले समय में ग्राम ऐसे ढंग से बनाये जाते थे कि प्रत्येक ग्राम का दक्षिण भाग और पश्चिम भाग जंगल रक्खा जाता था पूर्व और उत्तर भाग में कृषि होती थी। ग्राम के चहुं ओर विशाल और पूजनीय वृक्ष लगाये जाते थे जिन पर भान्ति २ के पक्षी मधुर स्वर से बोलते हुए घड़ियों का काम देते थे। दक्षिण दिशा की ओर श्मशान हुआ करते थे और अन्त्यजों का निवास भी उसी ओर होता था कारण कि उधर की वायु बहुत कम चलती है प्रत्येक ग्राम खुश्की और तरी का ध्यान रखते हुए सम भूमि में बसाया जाता था। आधी भूमि में खेती आधी में गोचर भूमि रहने से पशुओं की बहुतायता, और दुग्ध, दधि की प्रचुरता के कारण अन्न न्यून व्यय होता था। पक्के

और गोबरादि के खाद मिलने के कारण और थोड़ी ज़मीन को अच्छी कमाने के कारण अन्न बहुत होता था। आधी भूमि से राज्य कर नहीं लेता था इस से राजा और प्रजा को अधिक सुख मिलता था। यह सभी कृषक लोग जानते हैं कि जो पैदा सौ बीघे पृथ्वी में होती है वही अच्छी भान्ति कमाने पर पचास बीघे में ही हो जाती है। जो नौकर सरकार को २००) में मिलते हैं वह अन्न घृतादि के सस्ते होने के कारण ८०) अथवा ७०) ही में मिल सकते हैं। और गौ एक ग्राम से दूसरे ग्राम की सीमा तक चरती हुई सुख पूर्व आजा सकती हैं। बुरी नसल का कोई सांड नहीं छोड़ा जाता था। जिस की मा अत्यन्त दुधार होती थी उस के होनहार बच्चे को सांड छोड़ते थे। अन्यथा पंचायत और राज्य की ओरसे दण्ड मिलता था। इसी प्रकार वृक्षों की, अन्न की, मनुष्यों की उत्तम नसल बढ़ाने के लिये संस्कार किये जाते थे। जैसे गाजर को मीठी बनाने के लिये शक्कर से, मक्की कपास को गोबर से आम को दूध और शर्करा से भिगो कर के बोया जाता था इत्यादि। अब भी यह पृथा प्रचलित तो है परन्तु गोधूम यवादिकों की जो पृथा है वह साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण लुप्तहो गई है। कृषकों को चाहिये कि गोबर और हड्डियों को अपने खेतों में दबा दें जिस से उस का उत्तम खाद बन जाय। गोबर खुला हुआ पड़ा रहने से उस के परमाणु उड़ जाते हैं। अपने खेती की मेड़ों पर वृक्ष लगाने चाहिये। परमेश्वर जल में निवास करते हैं इस कारण जल को अपने खेतों से बाहर वृथा न जाने देना चाहिये। झील बनाने चाहियें, बन्द बान्धने चाहियें। तालाब खुद वाने चाहियें उन में जल का संचय करना चाहिये। जिस से अच्छे वृक्ष और बेल और औषधियें उत्पन्न होंगी जिन से बड़ी अच्छी हरियाली होगी। हरियाली में बैठे हुए श्री हरि भगवान् आखों को तराई देंगे। चित्त में शान्ति होगी इत्यादि।

इसलिए सब मनुष्यों को चाहिये कि वह अपने शिर से ऋण को उतारें जो मनुष्य दूसरे के लगाये हुए वृक्षों की छाया में बैठकर आनन्दित होता है उसको चाहिये कि वह भी वृक्ष लगावे। जो मनुष्य दूसरों के कूप और तालाबों से पानी पीता है उसको उचित है कि वह भी तालाब और कूप बनवावे अथवा उन में भाग ले। जो मनुष्य किसी का नमक खाता है अथवा दूध पीता है वह उसके वंश की रक्षा करने के लिये यत्न करे। जैसे लोग गौ का दूध पीते हैं और उनके बछड़ोंका कमाया हुआ अन्न खाते हैं यदि उसका हनन या अनिष्ट चिन्तन करें तो उनके कृतघ्नता रूपी दोष को कोई मत नहीं उतार सक्ता है। इसी प्रकार जिन ऋषियों की लाई हुई गंगा का जल पीते हैं, जिनके शास्त्रों से शास्त्री बनते हैं, जिस देश के पांचों तत्वों से विशेष कर भूमि से जिन का शरीर निर्माण हुआ है उसकी सेवा प्राण

पन से करनी चाहिये। देश नरेश महेश तीनों की भक्ति करना मनुष्य का परम कर्तव्य है जिस के द्वारा मनुष्य ने अपना जन्म देखा है अशक्त अवस्था में जिन्होंने इसको पाला पोषा है उन माता पिता की भक्ति करनी चाहिये। अग्नि होत्र करके देवताओं का ऋण, तर्पण श्राद्धादिक से पितृऋण वेद शास्त्रों के पठन पाठन द्वारा ऋषि ऋण उतारना चाहिये। गुरु भक्ति मनुष्य को संसार से पार उतारती है सो अवश्य करनी चाहिये। गुरु वही है जो इस लोक और परलोक के ज्ञान का दाता, अज्ञानका नाशक और अपना परम हितैषि हो।

एकाक्षर प्रदातारं यो गुरुं नाभिनन्दति।
श्वान जन्म शतं गत्वा चाण्डालेष्वभि जायते॥

एक अक्षर देने वाले गुरु का भी जो अभिनन्दन नहीं करता है वह कुत्तों के सौ जन्मों में जाकर पश्चात् चाण्डाल के यहां जन्म लेता है।

तस्मात् सद्गुरु कटाक्ष लेश विशेषेण सर्व सिद्धयः सिद्ध्यन्ति सर्व बन्धाः प्रविनश्यन्ति।

सद्गुरु की कृपा कटाक्ष के लेश विशेष से सर्व सिद्धि सिद्ध होती है। सर्व बन्धन नाश होते हैं।

श्रेयो विघ्नाः सर्वे प्रलयं यान्ति।

श्रेय मार्ग के सब विघ्न प्रलयको प्राप्त होते हैं।

सर्वाणि श्रेयांसि स्वयमेव आयान्ति।

सब कल्याण स्वयं आते हैं।

यथा जात्यन्धस्य रूप ज्ञानं न विद्यते तथा गुरूपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तत्व ज्ञानं न विद्यते।

जसे जन्म के अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता है वैसे ही गुरूपदेश विना क्रोड़ कल्पों में भी तत्व ज्ञान नहीं होता।

गुरु कटाक्ष विशेषेण अचिरादेव तत्व ज्ञानं भवति। यदा सद्गुरु कटाक्षो भवति तदा भगवत् कथा श्रवणाध्यानादौ श्रद्धा जायते।

गुरु कटाक्ष विशेष से शीघ्र ही तत्व ज्ञान होता है। जब सद्गुरु कटाक्ष होता है तब भगवत् कथा श्रवण ध्यानादि में श्रद्धा उत्पन्न होती है। दुर्वासना नाश होती है।

हृदय पुण्डरीक कर्णिकायां परमात्माऽऽविरभावो भवति। ततो दृढतरा वैष्णवी भक्तिर्जायते। शुभा शुभ कर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति। सात्विक वासनया भक्ति अतिशयो भवति। भक्ति अतिशयेन नारायणः सर्व मयः सर्वावस्थासु विभाति। सर्वाणि जगन्ति नारायण मयानि प्रविभान्ति नारायण व्यतिरिक्तं न किंचिदस्ति। एतद् बुद्ध्वा विहरति अस्य महापुरुषस्य क्वचित् क्वचित् ईश्वर साक्षात्कारो भवति।

हृदय रूपी कमल की डण्डी में परमात्मा का आविर्भाव होता है। पश्चात् दृढतर वैष्णवी भक्ति उत्पन्न होती है। वासनाओं के सहित शुभाशुभ सब कर्मों का नाश हो जाता है। सात्विक वासनासे भक्ति अतिशय होती है अतिशय भक्ति कर के सब अवस्थाओं में नारायण मय ही प्रतीत होता है। सारा जगत नारायणरूप हो जाता है। नारायण के सिवा कुछ नहीं ऐसा जान कर विहार करता है। इस महापुरुष को कुछ २ ईश्वर साक्षात्कार हो जाता है।

अपूर्ण

वृक्षों की उपादेयता।

(ले० श्री० प० किशोरीलाल जी शास्त्री वाजपेयी।)

सन्त विटप सरिता गिरी धरनी।
पर हित हेतु इन्ह की करनी॥

(तुलसीदास)

सन्सार में किसी भी वस्तु की उपादेयता अथवा अनुपादेयता उस के गुणों और अव गुणों को कारण मान कर हुआ करती है। इस जगत् में जितनी भी वस्तुएं हम देखते हैं, उनमें से कितनी ही हमें प्यारी मालूम होती हैं और कितनी ही बहुत बुरी। जिस वस्तु से हमें कुछ लाभ होता है, वह हमें, अत्यन्त प्रिय और जिस से हानि हो अत्यन्त अप्रिय प्रतीत होती है।

एक बात यह भी देखी गयी है कि, जिस वस्तु से हम सन्सारी जीवों को जितना ही अधिक लाभ पहुंचता है, परमात्मा ने कृपा कर के उस वस्तु को इस सन्सार में उत्पन्न भी उतने ही आधिक्यसे किया है; चाहें फिर हम उस पिता की दी हुई उस उपयोगी वस्तु को अपनी दुर्बुद्धि से दुरुपयोग या व्यर्थ में अपव्यय करके नष्ट कर दें अथवा बुद्धिमानी के साथ उस से यथोचित लाभ उठाकर उसे केवल सुरक्षित ही न रखें, प्रत्युत उस प्यारी और सुखमय पितृ-प्रदत्त सम्पत्ति को बड़े उद्योगसे बढ़ाने की चेष्टा करें।

सन्सारिक पदार्थों को भली प्रकार मनो निवेश-पूर्वक देखने से सहज ही प्रत्येक पुरुषको प्रतीत होगा कि, हम सबको उद्भिज्ज जगत् से कितना लाभ है। जो वृक्ष-लता आदि पृथवीको को फोड़कर निकलते या उत्पन्न होते हैं, उन्हें उद्भिज्ज कहते हैं। शास्त्रकारों ने इनको स्थावर शब्द से भी अभिहित किया है। मनुस्मृतिमें इन के औषधि, वनस्पति, गुच्छ, गुल्म, प्रतान, वल्ली और वृक्ष, इस प्रकार सात जातिगत भेद बताए हैं, और इन भेदों के फिर लाखों उपभेद हैं। इन सब भेदों में वृक्ष ही सब में प्रधान और अधिक उपयोगी भी दीखते हैं। इसका कारण यह है कि, एक तो ये चिरस्थायी होते हैं; फूल फल, पत्ते और छाया अदि सभी सामग्री से हमें सुख देते हैं और सूख जाने पर हम इन्हें काट कर अपना कार्य सुचारु रीति से चलाते हैं। काष्ठके बिना हमारे सब काम ही रुक सकते हैं इन्हीं सब कारणों से वृक्ष प्रधान माने गये हैं। और इनके लगाने की तथा रक्षा करने की

हमारे शास्त्रों ने हमें भूरि भूरि आज्ञा दी है । शास्त्र हमारा भला चाहते हैं । जिससे हमारा लोक और परलोक, दोनों जगह भला हो; शास्त्र हमें उसी कर्म को सफल करने की बार बार आज्ञा देते हैं । इस विषय में महाभारत के कुछ वचन उद्धृत करते हैं । स्मरण रखना चाहिए कि महाभारत कोई ऐसी चीज नहीं है इसे " पञ्चमो वेद उच्यते " पांचवां वेद कहा है । साधारणतया इस की महत्ता और गौरव के लिये इतना ही कह देना और समझ लेना पर्याप्त है कि, जिस " श्रीमद्भगवद्गीता " की संसार भर के विद्वानों में शिरोधार्यता है; जिस के आगे किसी की भी चूं चपट नहीं चलती और जिस के आगे योरप के भी बड़े से बड़े विद्वान् सादर शिर झुकाते हैं, वह परम मान्य "श्रीमद्भवद्गीता उस " महाभारत " का ही एक अंशमात्र है ॥ उसी मान्य भारत में लिखा है:—

"स्थावराणां च भूतानां,
जातयः षट् प्रकीर्तिताः ।
वृक्ष-गुल्म लता-वल्य,
त्वक्सारास्तृणजातयः " ॥

एता जात्यस्तु वृक्षाणां; तेषां रोपे गुणास्त्विमे ।
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम् ॥

अर्थात् स्थावर भूतों की वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, त्वक्सार और तृण समूह, ये छै जातियां हैं । वृक्षों की जो ये जातियां हैं, इन के लगाने से ये गुण हैं कि, (इन का लगाने वाला) इस लोक में तो यश और परलोक में उत्तम गति पाता है । उत्तम गति से तात्पर्य मोक्ष से है; क्योंकि "इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तेन मोक्षमाप्नुयाम् " इष्ट से स्वर्ग और पूर्त से मोक्ष मिलता है । श्रौत यागादि कर्मों को "इष्ट" और वापी, कूप, तडाग, देवमन्दिर आदि के निर्माण तथा जलाशयों, मार्गों, बागों एवं और ऐसी ही जगहों में वृक्षादि के लगाने, लगवाने को पूर्त कहते हैं स्मरण रखने की बात है कि शास्त्रने " इष्ट " से ' पूर्त" को ही अधिक महत्व दिया है; क्योंकि, इष्ट श्रौत यागदिकों से पुनरावृत्तिमय स्वर्गाप्ति ही कही है । परन्तु "पूर्त" से परमसुखमय, पुनरावृत्ति रहित, भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष श्री सर्वेश्वर भगवान् की कृपा से सहज ही लभ्य हो जाता है ।। कितना सौकर्य्य ! "आम के आम और गुठलियों के दाम" वाली कहावत यहां ठीक सोलहा आने उतरती है । वृक्ष लगाओ । शारीरिक परिश्रम से स्वास्थ्य ठीक होगा, उन के छोटे छोटे लहलहाते सुकोमल पौदों को देख कर नेत्र प्रसन्न होकर खिल उठेंगे और कभी न दुखेंगे । जब वे पौदे कुछ बड़े होंगे, किशोरावस्था में आयेंगे—तो उनके साथ खेलने के लिए भांति-भांति के रंग बिरंगे मनोहर पक्षी अपने शावकों सहित आ-आकर नन्हीं नन्हीं डालीयों पर इधर से फुदक-फुदक कर उड़-उड़ कर जब बैठेंगे, तो देखते ही बन

आयेगा और वे वहां से आप के हटाने पर भी न हटेंगी। कुछ ही दिन बाद जब आप के लगाए वे पौधे पूर्ण युवा होंगे, तो वे आप को और भी अधिक लाभ पहुंचायें गे। उन में तरह तरह के फूल आयेंगे, जिन से भौंरों के साथ ही साथ आप के मन ना सिका के द्वारा मस्त होकर वहीं घूमेंगे। अब उन में फल आने की बारी है। फल आते ही उन के बाल सखा पक्षी गण और आप सभी उन का पिंड न छोड़ोगे। कच्चे अधपके पके और सूखे सभी तरह के फलों से वे आप की सेवा करेंगे। कितने ही पथिक मार्ग श्रान्त उन की स्निग्ध शीतल छाया में विश्राम ले उनके मधुर फूलों से तृप्त हो आप की अन्तरात्मा को शतशः शुभाशीः देंगे। इस सब लाभ के बाद फिर जब वे अपनी आयु समाप्त कर सूख जावेंगे, तो आप उन्हें काट कर भान्ति २ के व्यञ्जन बनवा कर खावेंगे, भला विना आग के भी क्या कोई व्यञ्जन बन सकते हैं? केवल इतना ही नहीं, फिर जब कभी अन्त समय आयेगा, तो इन्हीं वृक्षों के सूखे काष्ठ से दाह संस्कार भी होगा। कहिए, कहां तक साथी हैं? और फिर मोक्ष मिलेगा।

एक बात और है। आज कल कलयुग में इष्टकर्म श्रौत यागादि करना सुलभ नहीं -असम्भव ही है, इस लिये भी "पूर्त" कर्म ही अवशिष्ट कर्तव्य रह जाते हैं। पूर्त में भी वापी कूप, तड़ाग, विद्यालय, स्कूल कालेज और देव मन्दिर का बनावाना प्रचुर व्ययसाध्य हैं ये काम बड़े-बड़े सम्पत्ति शाली श्रीमान् ही कर सकते हैं। साधारण कोटि के जनों की गम्य ही इन कर्यों में नहीं। परन्तु वृक्षारोपण एक एसा कर्म है जिस में सब का समान अधिकार और प्रवेश है। गरीब और अमीर सब इसे कर सकते हैं। कोई रुकावट नहीं और कोई खट खट नहीं केवल एक फावड़ा और गड़ा चाहिये। इस कर्म में इतनी सुगमता होने पर भी इस का का फल सब से बड़ा है। महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण जी कहते हैं:—

"पुष्पैः सुरगणान्वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितॄन्।
छायया चातिथिं तात पूजयन्ति महीरुहाः।

हे तात, वृक्षगण अपने फूलों से देवताओं की, फलों से पितरों की और छाया से अति थियों की पूजा करते हैं। तात्पर्य यह कि, वृक्षों को लगाने वाला देवता, पितर और अतिथियों की पूजा सहज ही बिना किए ही कर लेता है। अतः वृक्षों को लगने वाला:—

लभते नामलोके च पितृभिश्च महीपते।
देवलोकगतस्या पि नाम तस्य न नश्यति॥

इस लोक में नाम पाता है। फिर पितरों के साथ आनन्द करता है। देवलोक जाने पर भी उस का नाम नष्ट नहीं होता। और भीः—

अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत ।
तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद् वृक्षांश्च रोपयेत् ।

वृक्ष लगाने वाला अपने अतीत और आगत वंश को भी तार देता है; अतः अवश्य वृक्ष लगाने चाहिये।

यह सब महाभारत के अनुशाशन पर्व में विस्तार से लिखा है।

इन्हीं सब शास्त्रों की आज्ञाओं को मान कर और इन के लाभों को देख कर हमारे पूर्वज बड़े यत्न से वृक्षों को लगाते और रक्षा करते थे। अब वे हरित-भरित वृक्ष, वल्ली सुशोभित रम्य, आश्रम, वे चहुं ओरसे घन और निबिड़ वृक्षराजियों से स्निग्ध शीतल छाया सम्पन्न राजमार्ग, वे अपनी तरंगों से प्रसन्नता के साथ कूल स्थित विविध लतासमाश्रित श्याम पादपों की लची हुई टहनियों से खेलते हुए जलाशय और वे सतत वसन्तमय नवद्रुमों से आच्छादित वेदनिष्णात व्रती तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों की वेदध्वनि से गुंजते हुए देवस्थान अब कहां हैं। कहीं पाता हूँ? अब लगाना तो दूर रहा, हरे हरे सुहावने वृक्षों पर दिन रात कुल्हाड़ी चला करता है थोड़ी सी जमीन भी बिना जोते बोए न छोड़ी जाय, ऐसा दुनियां का खयाल हो गया है। समस्त भूमि के वृक्ष कटवा कर उन्हें खेत बना लिया जाय। कहीं नाम को भी 'गोरक्षण,, के लिए "गोचर भूमि,, भी किसी ने न छोड़ी गौएं तड़फड़ा तड़फड़ा कर बिना चारे मर रही हैं। कौन ध्यान देता है? फल यह होता है, कि संसार में उपयुक्त घी दूध आदि पदार्थों के न मिलने से दुनियां रोगी होती जाती है, और अकाल मृत्यु का शिकार होती है। तरह तरह के बनावटी घी दूध चल गये हैं, जिस के खाने से लोग अपने धर्म के साथ ही स्वास्थ्य से भी हाथ धो रहे हैं और किसी न किसी महान् रोग से ग्रस्त हो कर अकाल काल कवलित हो रहे हैं।

इधर जंगलों के कट जाने से अन्न की उपज में भी कुछ अधिकता नहीं दीख पड़ती किन्तु किसानों का कहना है कि, साल प्रति साल अन्न की उपज कम होती जाती है। यह बात सोलह आने सच है और इस के दो प्रधान कारण हैं। एक तो यह कि, जल की वर्षा कम हो गयी। वैज्ञानिकों का कहना है कि जहां वृक्ष अधिक होते हैं, वहां वर्षा ठीक होती है और जहां वृक्ष नहीं वहां वर्षा नहीं होती सूखा पड़ता है। इस के वे वैज्ञानिक हेतु देते हैं। मैं समझता हूं कि वृक्षों पर ही कृपा कर भगवान् वर्षा बरसाते हैं। जहां वृक्ष ही नहीं वहां वर्षा का उतना क्या काम? हमारे यहां ज्यों ज्यों जंगल कट कर जमीन को गंजे की खोपड़ी के समान सपाट करते जाते हैं, त्यों त्यों वर्षा की बूंद से वंचित होते जाते हैं। जल के अभाव से ठीक खेती की उपज नहीं होती और अन्न बिना दुनियां का खास

कर हमारा कृषी प्रधान देश भारत तड़फ तड़फ कर मरता है।

दूसरा अनउपज का कारण एक और है। भूमि की जितनी ही अधिक सेवा की जाय गी, वह उतना ही अधिक अन्न हम देगी। भूमि को खूब बनाना चाहिए। जितनी ही भूमि कमाई जायगी, उपज भी उतनी ही अधिक होगी। योरप आदि देश में प्रति बीघा बीस बीस और पच्चीस मन उपज होती है। परन्तु हमारे देश में क्या दशा है? दो मन या तीन मन बीघा। उन्होंने खेती के नए नए तरीके निकाले हैं। ऐसे ऐसे हल निकाले हैं कि हाथों गहरे भूमि में जाकर उसे पोली करते जाते हैं। हमारे यहां हल क्या जोतते है, मानो धरती को खुजलाते है। कठिनाई से दो चार अंगुल जमीन में हल जाता होगा। बताओ फिर पैदा कहां से हो? करें भी तो क्या? उन्हें एक तो यह खटका लगा है कि, अभी दो बीघा खेत जुत पाया है और चार बीघा और पड़ा है। जल्दी करते चलो। दूसरे चारे के बिना बैल ऐसे हो रहे हैं कि, उन का खाली ही चलना कठिन होता है फिर हल में तो राम ही चलाते हैं। ऐसी दशा में उतनी गहराई से कौन हल चलावे?

हां, अगर खेत कम किए जांय, पर उन की सेवा अच्छी की जाय, तो अवश्य अधिक उपज हो सकती है। मैं तो स्पष्ट समझता हूं कि वृक्षों को कटवा कर गौ आदि पशुओं की जमीन छीन छीन कर खेत बढ़ाते जाने से सिवाय हानि के लाभ कोई भी नहीं है। प्रत्युत गोचर भूमि के लिए प्रचुर भूमि छोड़ छोड़ कर उस में सुन्दर जलाशय बनवाने और वृक्ष लगवाने चाहियें।

मैं अपने प्रकृत विषय से प्रसंगात् जरा कुछ हट गया था, अब फिर ठिकाने आता हूं। मैं यह कह रहा था कि हमारे पूर्वज वृक्ष रोपण के महत्त्व को खूब जानते थे और इसे एक प्रधान धर्म माना था। समय के फेर से लोग इस बात को भूल गए।

अहा, जगज्जननी श्री पार्वती जी शिव प्राप्ति के लिए तपश्चर्या कर रही हैं। संग में कुछ सखियां भी हैं। आप कठोर तपस्या कर के क्षीण शरीर हो गई हैं। शरीर अस्थिमात्र शेष रह गया है, पर अपना पवित्र और नित्य कर्म वृक्ष सेवा नहीं छोड़ी। हाथ में जल पात्र है। उन कमल कोमल हाथों से घड़ा भर पानी लाती हैं और वृक्ष सिञ्चन में तत्पर हैं। घड़े के साथ ही साथ उन के श्रम बिन्दु, मानो उन पर करुणा कर के सिञ्चन कार्य में सहाय सी पहुंचा रहे हैं। देवीको इस सेवामें बड़ा आनन्द आता है। संग की सखियाँ देवीको पसीने में लत पत और श्रान्त देख कर जब उन से कहती हैं- "आप का शरीर अब अत्यन्त कुम्हला गया है। अब आप तब तक विश्राम कर लें, हम सब यह कार्य सावधानी के साथ किए देती हैं।" तो महारानी उन्हें कहती हैं- नहीं सखियो मुझे

इस कार्य में बड़ा आनन्द आता है; साथ ही यह बड़ा पुण्य कार्य है मुझे विश्वास है कि तपस्या से से बढ़ कर ईश्वर इस से प्रसन्न होते हैं" आखिर वे अपने तपश्चर्या के दिनों में अपने आश्रम के वृक्षों को बड़े यत्न से सींचती हैं उन के आलवाल बनाती हैं चारों ओर रक्षा के लिए बाड़ लगाती हैं और विविध यत्नों से उन्हें पालती तथा नवीन पौधे लगाती हैं और तभी तो इन वृक्षों के बारे में लिखा है "सम्व र्द्धितानां सुतनिर्विशेषम्" पुत्र के समान पाले हुये वे वृक्ष थे । पार्वती जी की प्रीति वृक्षों में षडानन और गणपति से एक तिल भी कम न थी। इन्हीं वृक्षों की जंगली पशुओं से रक्षा के लिये बाद में शिव जी ने अपने अनुचर को नियुक्तकर दिया था जो सिंह का रूप धारण कर उन की रखवारी करता था।

इधर कुलपति कण्व महाराज के आश्रम में देवी शकुन्तला किस प्रकार वृक्षों की सेवामें दत्त चित्त थी, सो सब कालिदास ने पूर्ण रूप से, अंकित किया है; जिसे पढ़कर मन प्रेम से सुन कर गला गद्गद होजाता है। जब महाराज दुष्यन्त, आश्रम में पहुंचते हैं, तो देखते क्या हैं कि, शकुन्तला अपने लगाये हुए हरे हरे छोटे छोटे पौदों को सींचने में लग रही है। मुनिवेश धारिणी शकुन्तला के शिर पर पानी का भरा हुआ घड़ा उस समय विचित्र शोभा देरहा था, जिसे देखकर राजा स्तब्ध हो गये थे, इस पुण्य कार्य के करने से उन्होंने पहचान लिया कि, यह अत्यन्त पवित्रात्मा, और दयार्द्र चित्त है। यही कारण था कि राजा ने शकुन्तला से अपना विवाह कर अपनी रानी बनाया। जबएक दिन शकुन्तला आश्रम से विदा होकर पौरव दुष्यन्त के यहां जाने लगी, तो किसप्रकार रोती हुई फिर फिर कर अपने लगाए हुए पौदों और वृक्षों की ओर प्रेम भरी स्निग्ध और कातर भरी दृष्टिसे देखती है कि,उन जड़ वृक्षों को भी रोना आता है। यह सबजानने के लिये संस्कृत के ,,कुमार सम्भव" ,और "अभिज्ञान शाकुन्तल" आदि ग्रन्थ पढ़ने चाहियें।

मेरा अभिप्राय इन कथाओं के लिखने का नहीं; मैंने तो केवल इतना ही दिखाने को यह जिकर किया है कि, किसी समय इस देश की स्त्रियां बेटियां, देवियां और परम सुकुमारी राज कुमारियां आदि तक उपयोगी स्थावर जगत् की जब ऐसी सेवा करती थीं तो पुरुषों का तो कह ना ही क्या है? उस समय सुख और स्वास्थ्यकी सम्पत्ति भी कुछ और ही थी।

हम कह चुके हैं कि वृक्षों का लगाना वैदिक'पूर्त' कर्म है। इस से लौकिक सुख और अन्त में मोक्ष मिलता है। शास्त्रों में सामान्यतः सभीवृक्षोंके लगाने को लिखा है और विशेषतः अधिक उपयोगियों को। शास्त्रों में न्यारे न्यारे वृक्ष लगानेकी विधि भीन्यारीन्यारी है। परन्तु इतना समझलेना चाहिए कि, येन केन प्रकारेण वृक्षों का लागना हमारा धर्म और शास्त्रीय धर्म है।

शास्त्र में लिखा है "पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति" पञ्चाम्र को लगाने वाला नरक नहीं जाता, अर्थात् स्वर्ग जाता है। हमारे पाठक 'पञ्चाम्र' शब्द से पांच आम न समझ लें यहां 'पञ्चाम्र' शब्द में आम का अर्थ बिल्कुल नहीं। शास्त्रों में लिखा है कि, बड़, पीपल, नीम अनार और नाती को पञ्चाम्र कहते हैं। इन का लगाने वाला कभी नरक नहीं जाता, सीधा स्वर्ग जाता है।

इसी प्रकार पीपल, आम और गूलर आदि सभी विशेष विशेष वृक्षों के लिए विशेष २ विधियां हैं और उनका फल भी भिन्न भिन्न है। परन्तु सामान्यतः सभी वृक्षों के लगाने की विधि है और उनको लगाने वालों को मोक्ष तक मिलने की बात लिखी है।

प्रायः देखा जाता है। कि, लोग जरा २ सी बात के लिए हरे २ सुन्दर वृक्षों को कुल्हाड़े मार मार कर जड़ से गिरा देते हैं। यहां तक कि, जलाने के ईंधन के लिये भी हरे वृक्षों को काट देते हैं और जब वह वृक्ष कट कर कुछ दिनों में सूख जाता है तो वे उसे चूल्हे में जलाने के काम में लाते हैं। यह बड़ा भारी अन्याय और पाप है। परन्तु किया क्या जाय? अधिक वृक्ष संसार में रहे नहीं, जो अपने से आप सूखे हुये वृक्ष अधिक संख्या में मिल जाँय, जिन्हें काट काट कर वे अपना काम चलावें। अन्ततः उन्हें हरे वृक्ष काटना ही पड़ता है। परन्तु है यह अवश्य अन्याय और पाप। किसी बड़ी जरूरत पड़ने ही पर हरा वृक्ष काटना चाहिये। साधारण सी बात में किसी वृक्ष या पौदे को काट गिराना अच्छा नहीं। सूखे वृक्षों को काट कर ईंधन बनाओ और जलाओ। नए नए वृक्ष लगाओ और लगवाओ।

स्मरण रखना चाहिये कि, ये वृक्ष भी तुम्हारी ही तरह चेतन हैं। यह भी सुख दुःख का अनुभव करते हैं और इन में भी तुम्हारी तरह स्त्री और पुरुष होते हैं। इन स्त्री पुरुषों के बीज आपस में जब मिलते हैं तभी फलों की उत्पत्ति होती है और इस मेल के कराने वाले हैं भौंरे और वायु आदि। इन सब बातोंको हमारे देश के गौरव स्वरूप आर्यकुल भूषण डाक्टर श्री जगदीश चन्द्रबसु महाशय ने वैज्ञानिक रीति से नये नये आविष्कार कर के प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है जिससे पश्चिम के विद्वानोंको भी यह बात माननी पड़ी है और किसी प्रकार के ननुनच की गुंजाश ही नहीं रह गयी है। यदि श्री बसु महाशय अपने अद्भुत आविष्कारों द्वारा यह बात सिद्ध न कर लेते तो योरप के बड़े बड़े विद्वान् और उनके भारतीय चेले मनु जैसे वृद्धों की बात कब मानने लगे थे? यद्यपि मनु महाराज पहले ही से स्पष्ट अक्षरों में कह गये हैं कि, ये सब स्थावर चेतन हैं और इन को सुख दुःख आदि होता है। देखिए मनुस्मृतिके आरम्भ में ही लिखा है "अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख समन्विताः"

आप प्रत्यक्ष अनुभव करें कि लज्जावती

का पौधा दिन को जगता और रात को सोता है। आप किसी पौधे के गमले को सेकचेदार खिड़की में रख दें, देखने में आयगा कि, गमले का पौधा या उसकी कुछ डालियां प्रकाश और वायु लेने के लिए बाहर झुक गये हैं।

यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि, जहाँ तक हो सके, इंधन आदि के लिए हरा वृक्ष न काट कर सूखा ही कटना चाहिए।

वृक्षों से एक और बड़ा भारी लाभ है और वह मनुष्य जीवन में सब से अधिक उपकारी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि, वृक्षोंसे अमृत वायु निकलती है, जिस को ले कर हम सब जीते हैं। अगरयह वायु हमें न मिले, तो हम सब तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जांय। और शरीर से निकली हुई विषैली वायु को ये (वृक्ष) स्वयं आदान करते हैं और उस से उन का पोषण होता है। अर्थात् हमारे शरीर से निकली हुई विषैली वायु ही उन का आहार है। यदि यह इस विषैली वायु को अपने में खींच कर जज्ब न कर लें, तो भी महान् अनर्थ हो जाय। सारांश यह कि, इन दोनों क्रियायों –विषैली और शुद्ध अमृतमय वायु के आदान– प्रदान से वे हमें जीवित रखते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि दिन को ही हम अमृत वायु का विसर्जन करते हैं और रात को उनके चारों ओर विषैली वायु का पसार रहता है। अतः दिन में और खास कर प्रातःकाल वृक्षों से सुशोभित दिव्य स्थान में सब को परिभ्रमण करना चाहिए इससे स्वास्थ्य दिन पर दिन प्रतिपद् के चन्द्रमा के समान बढ़ेगा मनुस्मृति के चौथे अध्याय में लिखा है :—

"रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत्"

"रात को वृक्षों की मूल के पास यानी उन के नीचे कभी न जाय।"

इस मनु वाक्य को पढ़ कर कौन कह सकता है कि, वे त्रिकाल दर्शी ऋषि अमृत वायु और विष वायु के आजकल के इस वैज्ञानिक सिद्धान्त कोन जानते थे।

जहां तक मुझे अपनी छोटी बुद्धि से पता लगता है, यही देखने में आता है कि वृक्षों से अगनित लाभ हैं। यह निश्चय है कि वृक्षों को लगाने और उनकी सेवा करने वाला वाला इस संसार और परलोक में सुख ही सुख पावेगा। यदि एक एक आदमी पांच पांच भी कम से कम वृक्ष कर लगा उन की रक्षा कर ले, तो काफी है।

कुछ दिन पहले तक हमारे देश में वृक्षारोपण की पवित्र प्रथा जारी थी। परन्तु इस नवीन सभ्यता के प्रभाव से हमारे देश की और और चर्चा जैसी उपयोगी प्रथाओं की तरह इस का भी नाम निशान मिट सा गया। विचारवान् और धार्मिक तथा देश सेवक पुरुषों को उचित है कि, इस प्रथा को फिर प्रचलित करने में पूरा योग दें और लाज छोड़ कर सब कोई थोड़े बहुत वृक्षों को लगावें।

फुलवारी और बगीचों को श्रीमान् लगवावें और गरीब लोग अपने खेतों के इधर उधर या मार्गों पर भी कुछ वृक्ष लगावें । सारांश यह की—"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।"

मिस "मारी कौरोली" द्वारा लिखित अङ्गरेजी की प्रसिद्ध पुस्तक "Life everlasting" के आधार पर ।

शाश्वत जीवन ।

प्रथम परिच्छेद ।

(ले० श्री० रामचन्द्र जज एम० ए०)

१

संसार में जो २ घटनायें प्रकृति के नियमानुसार परन्तु साधारण प्रसंगतिरिक्त होती रहती हैं उनके विषय में कुछ लिखना अथवा कहना प्रायः कठिन होता है । प्रथम तो ऐसे वृत्तान्त को कोई सत्य ही नहीं कहता । जो कोई आलस और उदासीनता के वश में आ कर किसी पद पर पहुंचने से रहजाते हैं जब कभी दूसरे को उसस्थान तक पहुंचा हुआ देख लेते हैं तो कृपण मति लोग ईर्षा से शत्रु बनें जाते हैं और कुबुद्धियों के क्रोध की सीमा नहीं रहती । समालोचक महाशय तो यह विचार कर लेते हैं की जिस विषय की समालोचना उनके आधीन है वह उनकी मति से उत्कृष्ट हो ही नहीं सक्ती । इसलिये असंस्कृत जन जगत में आत्मिक स्वभाव को समझ ही नहीं सक्ते । यह प्रसंग उनके लिये मुद्रांकित पड़ा रहता है वह इसे खोलने का न तो साहस करते हैं और न ही उनको उसे खोलने की आकांक्षा होती है ।

इसी कारण हमारे देश के ऋषि और मुनि अपने परम ज्ञान को जन समूह से छिपाये रहते थे । वह जानते थे कि पक्षपात मय संरुद्ध मति कितनी छोटी होती है । थोड़ी बुद्धि वाले जिस विषय को सीख नहीं सक्ते उसकी हंसी उड़ाया करते हैं । वह यह समझते हैं कि ऐसे हंसी उड़ाकर वह अपनी बड़ाई दिखाते हैं । वास्तव में उनके आचारण से उनकी अन्तरस्थायी मूर्खता ही प्रकट होती है । साईंस ने बड़ी २ प्राप्तियां जो अब की हैं उनका ज्ञान पहले भी था पर थोड़ों को विशेषतः वह सिखाई गई थीं । बेतार की तारबर्की, सूक्ष्म ज्योति इत्यादि भारतवर्ष के ऋषि तो क्या मिश्रदेश के "हरमेटिक माल्टगण" भी जानते थे और ईसा के आगमन से सैंकड़ों वर्ष पहले उनसे कामभी लिया करते थे इन का ज्ञान हरएक को केवल अब ही हुआ है । फिर देखिये कि इस ज्ञान का फल क्या निकला । हमारा देश तो अभी तक बहुत से अपराधों से बचा रहा है । यहां ऋषियोंका जिनको शक्तिका दर्शन करलें तो शिशुवत ज्ञान था लोग अभीतक सन्मान करते हैं और यदि किसी नवीन शक्ति

को देखें तो विस्मय से मुंह खोलकर खड़े हो जाते हैं। उधर पश्चिमीय देशों की दशा देखिये। जब गेलिलियों ने यह प्रचार किया कि पृथ्वी सूर्य की चारों ओर भ्रमण करती है तो उसके देशीय सज्जनों और विद्याशील पुरुषों ने ही उसे जीते जी थम्भ में बांध कर जला दिया। अब भी जब कोई नवीन शक्ति प्रकट होती है तो प्रथम उसको मानते ही नहीं और जब मान लेते हैं तो यह विचार करने लग जाते हैं कि उसका युद्ध अथवा संग्राम में कैसे प्रयोग किया जावे जिससे एक जन समूह दूसरे का संहार करके उसे अक्रमण करके उसका रुधिर पीता रहे। मनुष्य में इतना अहंकार और घमण्ड है कि वह अपनी बुद्धि को इतना निर्दोष समझता है कि सैकड़ों वर्षों तक उसने ज्योतिष के मूल धर्म भी नहीं सीखे। हमारे पण्डित अब भी पृथ्वी को ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र मानते हैं। इसी प्रकार मनुष्य परमात्मा से विमूढ़ रहता है। उसका अहंकार और हठ भाव आत्मिक शिक्षा की पहली श्रेणी में भी अपनी विपरीत मति के अनुसार पहले पाठ के भी उलटे अर्थ लगाता है। ऐसी दशा में आत्म ज्ञान कैसे हो सकता है। मनुष्य की तो यह गति है कि उससे विशेष को कोई दूसरी शक्ति नहीं। इस विचार की भी मूढ़ता देखिये : उसके जितने मत अथवा धर्म हैं सबके सब किसी ऐसी शक्ति के आधीन हैं। जिसको वह अपने से उत्कृष्ट मानता है। जब संसार में ऐसा अन्धकार छाया हुआ है तो उन आत्म ज्ञानियों का क्या दोष है। जो वह अपनी विद्या को पाखण्डियों से छिपाकर रखते हैं। उनको सदा यह शंका रहती है कि यदि वह अपने अनुभव अपना ज्ञान असाधारण मनुष्य गण को दिखा दंगे तो यह तत्वानुवेशी जन समूह ही उनको इस पृथ्वी पर चलने फिरने भी नहीं देगा। इसी कारण वह बड़े सोच समझ करके अपना पैर रखते हैं और यदि उनसे पूछा जाय तो कहदेते हैं कि हम को कोई विशेष ज्ञान नहीं, और न ही हमने संसार से पृथक् किसी अनुभवकी प्राप्ति की है उनकी आखों के सामने लोगों का जन्म उन्नति और नाश होता रहता है और उनको यह इच्छा नहीं होती कि वह किसी को चेला बनाएं अथवा किसी को अपने मत का अनुगामि करें मे अपने रहस्य का भेद किसी को नहीं देते वह जीवन सम्बन्धी कर्त्तव्य करते हैं लौकिक राज्य रीति के शासन का पालन करते हैं। उनकी अवस्था सदा निर्दोष और परोपकार में तत्पर रहती है। केवल अपने गुण ज्ञान के विषय में वह चुप रहते हैं यह नहीं कि लोग उन से लाभ नहीं उठाते कुछ दूर तक वह सब की सहायता करते हैं परन्तु कौतूहल प्रेरित धृष्टनेत्रों की पहुंच नहीं होने देते। मैं जो यह आत्म कथा रही हूं इसी पक्ष पर चलने वाली हूं।। मेरा किसी मनुष्य कल्पित मत से प्रयोजन नहीं मेरा किसी मत से विरो, धनी नहीं हो, लोग अपने धर्म के तत्व को त्याग अक्षर के पीछे चल देते हैं तो मैं उन के साथ नहीं चल सकी।

यामिमां पुष्पितांवाचं प्रवदन्त्य विपश्चितः ।
वेद वादरताः पार्थ नान्य दस्तीति वादिनः ।

तत्व में जीव है और केवल वाक्य मति को मार देता है । जब तक धर्म तथ्य को नहीं छोड़ता तब तक उस में दोष नहीं । श्रीकृष्ण भगवान भी कहते हैं „ ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम् । परन्तु जब धर्म पाखण्डी हो कर अपने उपासक को नरक का भागी कर देता है । तो मेरा सहानुभव तो कहां समस्त शक्तियां उन की शत्रु बन जाती हैं । श्रीभगवान का कथन है ।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रम शुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

मैं जानती हूं कि असुर योनि वाले मेरा तिरस्कार करेंगे उनको इर्षा होगी कि मेरे सन्मुख उस शोभायमान सुन्दर अनन्तावस्था का द्वार क्यों खुलगया और ईश्वरने मुझे ऐसी शक्ति क्यों अर्पण करदी कि मैं उसमें यथेच्छाया विहार किया करूं । परन्तु मुझे उनकी अवज्ञा अथवा तिरस्कार से प्रयोजन नहीं है वह मुझे इस तेज युक्त अविनाशी विश्वसे बाहर प्रतीत होते हैं और देवता मुझे दर्शन देकर मुझसे सुख सम्वाद करते हैं । लीजिये अब मैं अपना नियत कार्य करती हूं, और अपनी कथा कहती हूं । यह विचार न किजियेगा कि मैं कोई मिथ्या वाचन कर रही हूं । कथा के स्वरूप में जो २ बातें मैं प्रकाश करूंगी उनमें इतना ही असत्य है जितना कि बड़े बड़े ऋषियों के वाक्यों में था । देखिये अब उनके बचनों को अनात्म विद्या के ज्ञानी भी मान गये इस भ्रम को छोड़ दीजिये कि कोई वस्तु सत्य नहीं । जब तक आप उसका अपनी स्थूलेन्द्रियों के स्पर्शादि से अनुमान न करलें । पहले २ तो प्रत्येक तत्वार्थ की सम्भावना सर्व प्रकार ज्ञानेन्द्रिय को ही होती है । अर्थात् उस ध्यान मात्र ही होता है कारण यह कि आत्मा अनन्त सत्व सम्बन्धी वस्तु को स्वभाव से ही पहचान लेता है । और आत्मा जिस भाव का आकांक्षी हो वह उस को मिल कर ही रहता है ।

स्त्री जाति का उद्धार कैसे हो ?

(ले० श्री० भगतराम फिरोज़पुर ।)

पाठक महोदय ! आज कल जब कोई जरुरी सामाजिक सुधार का सवाल पेश किया जाता है । तो बहुधा लोग यही कह छोड़ते हैं कि " सब खराबियों का इलाज स्वराज के मिलने से ही होगा" । परन्तु इस बात को विचार में नहीं लाया जाता, कि जिस मुल्क के करोड़ों घरों में अमन व अमान की जगह दिन रात खानह जंगियां ही रहती हों । और मुल्क का दिल व दिमाग़ बहुधा आपस के ही खानगी और सामाजिक झगड़ों में खर्च

हाता हो । भला वह मुल्क स्वराज के योग्य क्योंकर कहा जा सकता है? और फिर हासिल किये हुए स्वराज को भी ऐसा मुल्क क्योंकर कायम रख सकेगा?

और जिस मुल्क की अकसर धर्म पुस्तकें नेता और सम्पादक क़ौम के अर्ध भाग अबला अर्थात् स्त्री जाति के साथ न्याय का बर्ताव करने और उन को उचित मानुषी अधिकार देने या दिलाने को तैयार न हों। फिर वहाँ की अबला स्त्रियों पर अत्यचार न हों तो और क्या हों? और सज्जन जन यह भी बतलायें कि ऐसी दुखिया माताओं के दुःख भरे दूध को पी कर तंदुरुस्त, उत्तम दिमाग़वाली, और खुशहाल सन्तानें भी हिन्दुस्थान में क्योंकर उत्पन्न हो सकती हैं? इस लिये स्त्री जाति के उद्धार के विषय में योग्य पुरुषों का चुपके हो रहना सरासर अपने धार्मिक और अख़लाकी फ़र्ज़ को बिसारना ही है॥

भारतवर्ष में चिरकाल से स्त्री जाति पर अत्याचार होते चले आरहे हैं। और चिरकाल की बेइनसाफ़ियों और निराशाओं के पश्चात् अब यह जरूरी मालूम होता है कि दूसरों के भरोसे पर ही न रह कर ख़ास ख़ास बुद्धिमान् स्त्रियें अपने की जातिय सुधार के लिये खुद आप भी अपनी कोशिश करनी शुरू कर दें। और अब उन का ऐसा करना ईश्वरी और सृष्टि नियमों के अनुकूल ही है। क्योंकि मौजूदा सख्त मुश्किलों के अन्दर अक स्मात ज़िकर अनकार कर देने से आशा सुधार की नहीं होसकती जब तक कि हर एक शहर व गाँव में कम से कम एक दो स्त्रियां इस धर्म कार्य के लिये तय्यार न होवें। उनके सोच विचरार्थ इस नेक काम के करने के लिये कुछ जरूरी तजवीज नीचे बयान की जाती हैं।

स्त्री जाति के उद्धार के लिये कुछ जरूरी बातें।

१ विचारवान स्त्रियों को चाहिये कि वह अपनी अन्य अनपढ़ और असावधान बहनों की मुसीबतों का कुछ हाल यथा शक्ति अपने देश के नेताओं, अखबारों के सम्पादकों, कौंसिलों के मेम्बरों और मुकामी अफ़सरों के कानों तक हमेशा पहुंचाती रहा करें। इस तरह पर सम्भव है कि कभी किसी दयावान् और सुननेवाले कानों तक उनकी मुसीबतों का हाल पहुंच जावे।

(२) हिन्दुस्तान में पांच वर्ष की उमर से लेकर ऊपर तक की करोड़ों विधवायें बैठी हैं। जिन को प्रायः उन के कठोर दिल संबन्धी लिखने पढ़ने का ज़रूरी सामान तक भी खरीद कर नहीं देते। इस लिये समर्थवान् स्त्रियों को जब कभी दान करने का कोई शुभ अवसर प्राप्त हो तो वह अपना दान अब से हमेशा

दुखिया स्त्रियों की धार्मिक शिक्षा निमित्त ही लगावें। और उन को पढ़ने का जरूरी सामान खुद दिया करें ताकि उन की दशा कुछ सुधरे और जरूरत के समय पर वह अपनी रोजी कमाने के भी योग्य बन सकें।

(३) लिखी पढ़ी स्त्रियों को हर एक शहर व कसबे में स्त्री जाति उद्धार समाज कायम करनी चाहियें। आज कल कई शहरों में स्त्री समाजें लगती हैं। परन्तु शोक है कि प्रायः स्वार्थी लोगों ने उन की कार रवाई ऐसे ढंग पर करवा रक्खी है। कि जिस से स्त्री जाति को कुछ लाभ नहीं पहुंच सकता। दो दो और तीन तीन घंटों का अमूल्य समय खाली भजनों हवन, अथवा संध्या के मंत्र दोहराने में ही खर्च कर दिया जाता है। इस लिये स्त्री सुधार की खातिर स्त्री सभाओं की कार रवाई इस प्रकार की होनी जियादह उचित होगी कि:—

(क) स्त्री जाति के दुखों पर विचार भी हुआ करे। और उनका मुनासिब इलाज सोचा जावे॥

(ख) स्त्रीसभा में एक दो ऐसे साप्ताहिक अखबार या मासिक पत्र मंगवाये जाया करें। कि जिनके अन्दर स्त्री जाति के उद्धार निमित्त भी लेख प्रकाशित होते हों॥

(ग) जो समाचार पत्र, पुस्तकें अथवा व्याख्यान स्त्री जाति उद्धार के विरोधी हों। उनको कभी नहीं मंगवाना चाहिये। और न ही उनको पढ़ना या सुनना उचित है। इस तरह पर स्त्री जाति के विरोधियों को भी अपना स्वार्थ भरा विरोध छोड़ कर कभी न कभी न्याय की तरफ जरूर झुकना पड़ेगा॥

(४) हिन्दू विवाहों के रीति रिवाजोंकी ओट में जो नाहक मुसीबतें पश्चात् से बेचारी स्त्रियों पर आ पड़ती हैं। उनके सहारने में दूसरा कोई साथी नहीं बनता। पंडित, प्रोहित और पंच लोग तो अपना लाग—पैसल ले के या देकर चलते बनते हैं। और फिर उमर भर किसी के सुख दुख की कोई परवाह नहीं करता। इस संसार में सब ही पुरुष देवता स्वरूप नहीं होते। बहुतेरे खाविंद अपनी प्रतिज्ञाओं को तोड़ कर जालिम और बेरहम निकल आते हैं। इस लिये बुद्धिमान लड़कियों को अपने माता पिता के घर में शान्त चित्त रहकर घरके काम काजों के साथ २ विद्या अभ्यास भी करते रहना चाहिये और जहां तक हो सके, बाल विवाह से बचने का नम्रता पूर्वक प्रयत्न किया करें॥

यदि कोई माता पिता अपने किसी लालच में पड़कर कोई अनमेल बाल विवाह, वृद्ध विवाह या बहु विवाह का प्रबन्ध करने लगें। तो लड़कों की तरह विचारवान लड़कियों को भी अपनी आत्मानुसार चलने का अधिकार है कि वह ऐसे अनुचित मार्ग से बचने के लिये अपना आंतिक भाव प्रगट करें। या करें। क्यों कि फिर उमर भर अनगणित और अकथनीय

मुसीबतों से बचने के लिये अब इस समय ज़रा सा इन्कार कर देना बिलकुल उचित और धर्म की बात है। और आधी रात के फेरों के अन्दर अबला कन्याओं के साथ कभी २ और भी कई प्रकार के धोके हो जाया करते हैं॥

(६) इसाई धर्म के अन्दर हजारों क्या बल्कि लाखों स्त्रियां ऐसी हैं। जो अपनी नेक हिन्दुनी सारी उम्र क्वारी रहकर बड़े २ परोपकारी कामों में ही खर्च कर देती हैं। इसी तरह पर हर एक शहर व कस्बे में यदि दो चार हिन्दू स्त्रियां भी ब्रह्मचारिणि रहकर पवित्र जीवन अपनी हिन्दुस्तानी बहनों के उद्धार के निमित्त परोपकारी कामों के करने करानेमें ही लगा दें। तो फिर स्त्री जाति के दुखोंका दूर होजाना कोई मुश्किल काम न रहेगा। और स्त्री जाति के ऊपर से कुरीतियों की और उनके ऊपर से अत्याचारों की रओ (लहर) जल्द दूर होजायगी॥

अपने चित्तमें ईश्वर का भय और मौतका डर रखते हुए, क्या पुरुष और क्या स्त्री सबकी तरफ़ अदल व इन्साफ (न्याय) का बर्ताव बढ़ाने की खातिर यह चन्द सतरें लिख दी गई हैं। ताकि स्त्री जाति के उचित मानुषी अधिकार स्वीकार और कायम हों। और यह कि हिन्दू जाति अपनी मौजूदा गिरी हुई अवस्था से उठ सके। आशा है कि सज्जन पुरुष पक्षपात से रहित होकर उन पर कुछ विचार करेंगे। और फिर अपनी तरफसे भी सत्य बात आगे कहेंगे। जिससे कि हम अपनी माताओं, बहनों और बेटियों की तरफ अपने जरूरी फर्ज से सुर्खरू (उत्तीर्ण) होसकें॥

धर्म उपदेश।

(ले० मुन्शी रूपराम जी बनस्थी)

हिन्दू कहां रहे हो, हिन्दी कहाने वालो॥
भूले हो राह अपनी, सब को दिखाने वालो॥
क्या थे बने हो क्या अब, शीशे में जाके देखो।
अपना पता लगाओ; सब को बताने वालो॥१

एक दिन वह था कि राजा हरिश्चन्द्र अपने सर्व राज्य पाट को त्याग रानी और पुत्र को बेच चांडाल के घर बिक जाता है परन्तु अपने सत्य धर्म को नहीं छोड़ता है आज वह दिन है कि सूखे टुकड़ों के बदले लोगों का धर्म व ईमान बिक रहा है सेर भर पूरियां खिला दो और जी चाहो सो कहलवा लो।

भारत तुम्हारी माता, बेज़ार रो रही है।
मिट्टी तो देखो इसकी, क्या ख़्वार हो रही है।
मंज़िल तुम्हारी है क्या, मुखड़ा किधर तुम्हारा॥
पीछे को फिर के देखो, बदला है रंग सारा।
करवट तो फेरो अपनी, आंखें उधर उठाकर॥
घर लुट चुका तुम्हारा, किस का रहा सहारा।
भारत हुई है ग़ारत, बेकस हो रो रही है॥
सन्तान उस की ग़ाफ़िल, बेहोश सो रही है॥२

वह भारत जिस के रामचन्द्र जैसे सुपुत्र अपने पिता का बेबसी की दशा में

संकेत पाकर राजगद्दी को छोड़ अपने आली-शान महल से मुंह मोड़ बनों में खाक छानते फिरते थे आज उसके कुपुत्र अपने मा बाप और भाइयों से गली गली जूता पैजारी कर रहे हैं।

हालत है क्या तुम्हारी, रोगी हो रोग भागी ॥
दारू है क्या तुम्हारी, दारू पिलाने वाली।
भारत का बाग़ देखो, उजड़ा हुआ पड़ा है ॥
माली हुआ है ग़ायब, जा दूर पर खड़ा है ॥३

बीस शताब्दी पीछे हट जाओ देखो वहां क्या हो रहा है वेद का सब से श्रेष्ठ नियम अहिंसा जब भारत से कूच करने लगा तो एक राजा का पुत्र अपने शाहाना ठाठ बाट को त्याग फकीराना लिबास पहन मैदान में उठ खड़ा हुआ अपने प्यारे जीवन को मामूली भेड़ बकरी की जान के बदले न्योछावर कर दिया वह राजा गोतम बुद्ध के नाम से मशहूर है और हिन्दुओं के बड़े २ अवतारों में प्रसिद्ध है आज वह बात स्वप्न में भी दिखाई नहीं देती।

अपनी संभालो पगड़ी, सारी गवांने वाली ॥
हालत संभालो अपनी, बिगड़ी दशा तुम्हारी।
भारत की नाव कैसी, डुबकी लगा रही है ॥
चक्कर में आ फंसी है, मजधार जा रही है ॥४

राजा अशोक ने जब देखा कि अहिंसा के परम धर्म नियम के पालन में सच्ची कुर्बानी की जरुरत है तो राजा ने अपनी प्यारी सुपुत्री को महल में से बुला कर दरबार में पेश किया और घर २ जंगल २ भीख मांगने और देशोन्नति के लिये घर से निकाल दिया और इसी प्रकार अपने पुत्र को भी फकीराना लिबास से सुसज्जित कर भेज दिया क्या वे दोनों बड़े प्रेम और खुशी के साथ घर से नहीं निकल गये अपने धर्म को पूरा न कर दिया क्यों न हो रामायण से एक दोहा निकलता है कि:—

मात पिता गुरु स्वामी सिख।
　　सिर धर करहिं सुभाय ॥
पावें लाभ तिन जन्म के।
　　नतरु जन्म जग जाय ॥

घर घर तुम्हारा देखो, बरबाद हो चुका है।
किस घरको जारहे हो, किस घरकी आशिष लो
भारतका फोटो देखो, बिगड़ी दशा तुम्हारी।
सब हो रहे हैं घायल, आये हैं जख्म कारी ॥५

चीन देश का एक यात्री अपने सफर नामे में लिखता है कि मैंने भारत में लम्बा सफर किया उस के गली कूंचों में फिरा परंतु कोई मनुष्य ऐसा न मिला जोकि दरोग़ बाज़ न हो अर्थात् (असत्य वादि हो) सारे भारत में केवल एक ही जेलखाना मिला परन्तु वह भी खाली आज आंखें दौड़ा कर देख आओ क्या कोई शहर या गांव या घर ऐसा नज़र न पड़ेगा। सारा मुल्क जेलखाने कैदियों और रोगियों से भरा पड़ा है।

दीपन पाचनादि गुणों के लक्षण ।

जो पदार्थ आम (कच्चे) को पकावे नहीं परन्तु अग्निको प्रदीप्त करै वह दीपन कहाता है जैसे कि सौंफ ।

जोपदार्थ कच्चे को पकावे परन्तु अग्नि को दीपन नहीं करे उसको पाचन कहते हैं जैसे कि नागकेशर ।

जो अग्नि को दीपन करता है और कच्चे को पकाता है उसको दीपन पाचन कहते हैं जैसे कि चीता ।

जो पदार्थ तीनों दोषों को शुद्ध नहीं करता अर्थात् ऊर्ध्व तथा नीचे मार्ग में नहीं लेजा सकता समान दोषों को बढाता नहीं और विषम हुये दोषों को सम करता है वह पदार्थ शमन कहाता है जैसे कि गिलोय ।

जो पदार्थ कच्चे वात पित्त और कफ को पकाकर वायु के बन्धन को, भेदन करके नीचे लेजाता है अर्थात् मलों को गिरा देता है वह पदार्थ अनुलोमन कहाता है जैसे कि हरड ।

जो पदार्थ कोठे में चिपटे हुये पकाने योग्य मल कफ और पित्त हैं उनको विना पकाये ही नीचे लेजाय वह रेचन कहाता है जैसे कि अमलतास ।

जो वातादि दोषों से बंधे हुये मलमूत्र को अलग अलग करके गुदद्वार से बाहर निकाले उसको भेदन कहते हैं जैसे कि कुटकी ।

जो पदार्थ अपक्व अथवा कच्चे मल को द्रव रूप (पतला) करै और नीचे को गेरे वह पदार्थ रेचन कहाता है जैसे कि निसोथ ।

जो पदार्थ कच्चे पित्त कफ तथा अन्नके समूह को मुख के मार्ग से बाहर निकाले वह पदार्थ वमन कहाता है जैसे मैनफल ।

जो पदार्थ मल को समूह के अपने स्थान से बाहर निकाले अथवा नीचे या ऊपर ले जाय वह पदार्थ देह शोधन कहाता है जैसे कि देवदाली ।

जो पदार्थ अग्नि को दीपन करने वाला कच्चे को पकाने वाला और गरम होने से द्रवता रूप (गीलेपन) को सुखाने वाला है वह द्रव्य ग्राही कहाता है जैसे कि सोंठ जीरा और गजपीपल ।

जो पदार्थ रूक्षशीतल कषैला और लघुपाकी होने से वायु को उलटा करने वाला हो वह पदार्थ स्तम्भन कहाता है जैसे कि कुड़ा और सोनापाठा । यह नीचे जाने वाले मलादिक को रोककर रखता है इसलिये स्तम्भक कहाता है ।

जो पदार्थ शरीर में चिपटे हुये कफादिक दोषों को बलात्कार से उखाड़ डाले वह पदार्थ

छेदन कहाता है जैसे कि जवाखार आदिखार काली मिरच और शिलाजीत।

जो पदार्थ देह के धातुओं को अथवा मल सुखाकर दुर्बल करे वह पदार्थ लेखन है जैसे कि मधु उष्णजल वच और इन्द्रजौ।

जिस द्रव्य से वीर्य की वृद्धि होय वह द्रव्य शुक्ल कहलाता है जैसे कि नागबला आदि और कौंच के बीज।

दूध उड़द भिलावे की मींग और आमले ये अपने प्रभाव से शीघ्र ही रसादिक को उत्पन्न करके वीर्य की अधिकता होने पर उसकी प्रवृत्ती करते हैं स्त्री वीर्य को प्रवर्त्ताने वाली कटेरी का फल वीर्य का रेचक जायफल वीर्य का स्तम्भन करनेवाला और तरबूज (इन्द्रोजौ) वीर्य का क्षय करते हैं और स्त्री का स्मरण कीर्तन दर्शन संभाषण स्पर्श चुम्बन आलिङ्गन और मैथुन यह सम्पूर्ण क्रियायें वा एक ही क्रिया वीर्य को प्रवृत्ताने (निकालने) वाली हैं।

जो पदार्थ जरा और व्याधि का हाश करने वाला होय वह पदार्थ रसायन कहाता है जैसे कि दन्ती गूगल और शिलाजीत।

जो पदार्थ प्रथम सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर पश्चात् पाक अवस्था को प्राप्त हो वह पदार्थ व्यवायी कहाता है जैसे कि भांग और अफीम।

---

* भक्त के लक्षण *

कथं विना रोम हर्षं, द्रवता चेतसा विना।
विना नन्दाश्रु कलया, शुध्येद्भक्त्या विनाशयः॥

विना रोमांच हुये, विना चित्त के द्रवि भूत हुये, विना आनन्द के अश्रुपात हुये भक्ति किस प्रकार जानी जावे और भक्ति विना अन्तः करण किस प्रकार शुद्ध हो॥१॥

वाग् गद्द गदा द्रवते यस्य चित्तं,
रुदंन्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विल्लज्ज मुद्गायति नृत्यते च,
मद्भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति॥२॥

जिस पुरुष की वाणी गद्गद्ग और चित्त पुनः २ द्रविभूत हो जावे जो लाज छोड़कर कभी रोवे कभी हंसे, कभी ऊंचे स्वर से गावे कभी नृत्य करे, वह भक्ति युक्त पुरुष संसार को पवित्र करता है॥२॥

यथा अग्निना हेम मलं जहाति,
ध्मातं पुनः स्वभजते स्वरूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधय,
मद्भक्ति योगेन भजत्यथोमाम्॥३॥

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्ण अपने मैल को छोड़ कर अपने वास्तविक रूप को धारण करता है। इसी प्रकार चित्त भी भक्ति योग द्वारा वासना को त्याग कर मद्रूप हो जाता है॥३॥

यथा यथात्मा परि मृज्यतेऽसौ,

मत्पुण्य गाथा श्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं,
चक्षुर्यथैवांजन संप्युक्तम् ॥४॥

जितना २ यह मन मेरी कथा के श्रवण और कीर्त्तन से शुद्ध होता है, उतना ही उतना अंजन से शोधित हो नेत्र की नाईं शुद्ध वस्तु को देखता है ॥४॥

विषयान् ध्यायतश्चित्तं, विषयेषु विषज्यते ।
मामनुस्मर नश्चित्तं, मय्येव प्रविलीयते ॥५॥

विषयों का ध्यान करने से चित्त विषयोंमें लग जाता है और मेरा स्मरण करने से चित्त मेरे में ही लीन हो जाता है ॥५॥

परन्तु जब भक्ति भावना तीव्र होगी यह दशा स्वयं प्राप्त होगी इस का प्रयत्न करने से कुछ प्राप्त नहीं होगा इसलिये उपासक को चाहिये कि दृढ़ अभ्यास और वैराग्य द्वारा अपने चित्त को बाहर से पुनः २ खींच कर उपास्य देव में लगावे ज्यों २ अभ्यास बढ़ेगा शरीर की आप विस्मृति होती जावेगी फिर रोना हंसना उच्च स्वर से गाना वा नृत्य करना आदि जैसे महा प्रभु चैतन्य को होता था स्वतः होगा । अन्तः करण समान नहीं किसी का चित्त थोड़ी सी बात में द्रवीभूत हो जाता है किसी के अन्दर भक्ति भाव होने पर भी उस का बाहिर कोई आकर नहीं दिखाई पड़ता । यदि बिना इस अवस्था के स्वयं प्राप्त हुए रोया, गाया, नाचा जावेगा तो उस से उभय भ्रष्ट होगा । इस में सन्देह नहीं कि भक्ति भाव के तीव्र होने पर लौकिक मर्यादा की परवाह नहीं रहती । भक्त प्रिय से प्रिय पदार्थों को भी यदि वह उस के मार्ग में कुछ भी विघ्नकारी हो छोड़ देता है । मीरां बाई ने अपने पति और राज्य को, महा प्रभु चैतन्य ने अपने कुटम्ब और पाण्डित्य को, नरसी महता ने अपने सारे धन को, तुलसीदास जी ने अपनी अत्यन्त प्रिय स्त्री को अपनी भक्ति में विघ्न जान कर त्याग दिया । और २ भक्तों की भी यही दशा हुई । परन्तु यह त्याग बिना अकृत्रिम प्रेम के नहीं बन सकता । यदि ऐसे लोग, कोई लोक बाह्य चेष्टा भी करें तो उन को हानि नहीं जिन का भाव ऐसा दृढ़ नहीं हुआ उन को ऐसी चेष्टा करनी बुरी है । प्राचीन समय में व्यास, नारद, हनुमान, प्रहलाद, भीष्म, शंकर, उद्धवादि कुछ कम नहीं हुये परन्तु वह कोई चेष्टा लोक बाह्य नहीं करते थे । निःसन्देह इन महापुरुषों को पूरा वैराग्य, पूरी ईश्वर भक्ति थी । परन्तु वह लोक मर्यादा को बराबर पालन करते थे । ईश्वर में दृढ़ भावना और उस के निरन्तर चिन्तन और संसार के वैराग्य के साथ लोक संग्रहार्थ कर्म किया जाना सर्वथा असम्भव नहीं जहां गंगा जी बहुत गहरी होती है वहां ही जल चलता प्रतीत नहीं होता । क्रुद्धों पर क्षमा, दुःखियों पर दया, धर्म शीलों से संतोष, निष्काम कर्म में तत्परता, सब के हित का चिन्तन अपने इष्ट देव में सच्चा प्रेम यह सच्चे भक्त के लक्षण हैं उस से बुरा काम

कभी हो नहीं सकता, न उस को किसी से द्वेष होता है, न राग, सदा संतुष्ट, सदा समुचित हर्ष विषाद से रहित, न उस को किसी से भय है न उस से किसी को भय है, शत्रु, मित्र, मान, अपमान, निन्दा, स्तुति, सुख, दुःख, सब में समान यथा प्राप्त में संतुष्ट, शोच, उद्वेग, आकांक्षा, मान मत्सर से रहित, स्थिर चित्त, परम श्रद्धालु, ऐसे भक्त ही भगवत और लोक दोनों के प्रिय होते हैं।

भक्ति के अधिकारी।

यहभक्ति मार्ग सब के लिये तुल्य है यहां किसी वर्णाश्रम की अपेक्षा नहीं, स्त्री, पुरुष, बाल, युवा वृद्ध, ब्राह्मण, शूद्र यहां सब को अधिकार है पापी से पापी नीच से नीच पतित से पतित भी इस मार्गमें प्रवेश करते ही पवित्र होजाता है। जिस किसीके चितमें वैराग्य सात्विकी श्रद्धा और भगवान में अनुरक्ती हो वही भक्त है। ध्रुव पांच वर्ष का राजपुत्र, प्रहलाद असुर राज कुमार, अहिल्या ऋषि पत्नी, हनुमान वानर, विभीषण राक्षस, विदुर शूद्र, धर्म व्याध मांस बेचने वाला, मीरांबाई राजा की रानी, तुकाराम वैश्य, कबीर जुलाहा, दादु धुनियां, रइदास चमार आदि भी वैसे ही परम भक्त हुये जैसे भीष्म, युधिष्ठिर अर्जुन विक्रमराजा; नारद, व्यास, शुक्र, शंकर, रामानुज ऋषि, महाप्रभु चैतन्य, तुलसीदासादि ब्राह्मण, गीता में कहा है:—

अपि चेत्सु दुराचारो, भजते मामनन्य भाक्
साधुरेव स मन्तव्य, सम्यग्व्यवसितो हि सः

"अत्यन्त दुष्कृत करने वाला पुरुष भी यदि अनन्यचित्त हो मेरा भजन करे, तो उसे साधुही मानना चाहिये। क्योंकि उस का निश्चय शुद्ध है ॥ १ ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, शाश्वच्छान्तीं निगच्छति
कौंतेय प्रतिजानीहि, न मे भक्त प्रणश्यति

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो परम उपशम को प्राप्त होता है, हे अर्जुन, तू प्रतिज्ञा से जान कि मेरा भक्त कभी अधोगति को प्राप्त नहीं होता ॥२॥

मामहि पार्थ व्यपाश्रित्य, येपिस्युः पापयोनयः
स्त्रियो वैश्या स्तथा शूद्रास्तेपियान्ति परांगतिम्

हे अर्जुन जो जन्म से पापी हैं और स्त्री वैश्य शूद्र यहभी मेरा आश्रय लेकर परम गति को प्राप्त होते हैं ॥३॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व मां

फिर उन पुरुषों का जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि हैं कहना ही क्या इस अनित्य और दुःख रूपी संसार को प्राप्त होकर मेरा भजन कर ॥४॥

मन्मना भवमद्भक्तो, मद्याजीमां नमस्कुरु
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मान मत्परायणः

मुझमें ही मन लगा मेरा ही भक्त हो, मेरी ही पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर। इस प्रकार मनको मत्परायण करने से मुझको ही प्राप्त होगा। यदि भगवद्रूपी कल्प वृक्ष की छाया में जो सब संतापों को दूर करती है विश्राम करो और जैसा चित्त सांसारिक विषयों में लगाते हो वैसा भगवान् में लगाओ, तो इस लोक तथा परलोक दोनों में आनन्द होने में क्या सन्देह है भगवान स्वयं भक्तों के सर्व कार्यों को सिद्ध करते हैं, आपत्ति यदि आवेगी तो ठहरेगी नहीं, भावके शुद्ध होने से संकल्प भी शुद्ध होगा। और संकल्प की शुद्धी से सब पाप नष्ट हो कर सब ग्रन्थियों का भेदन और परम पद की प्राप्ति होगी। भक्त चार प्रकार के होते हैं, आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी और ज्ञानी इनमें ज्ञानी जो सबको भगवद्रूप देखता है श्रेष्ठ है परन्तु भगवद्भजन चाहे जिस भावसे किया जावे सदा कल्याण कारी है। मनुष्य जन्म का फल यहीहै कि:—

भक्तिर्भवे मरण जन्म भयं हृदिस्थं।
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः॥
संसर्ग दोष रहिताः विजनावनान्ता।
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम्॥ १

"सदा शिवजी की भक्ति जन्म मरण का हृदय में भय बन्धुवों के स्नेह और कामदेव के विकार का मन में अभाव, और संसर्ग दोष से रहित निर्जन वन निवास, इस से परे और क्या वैराग्य मांगने योग्य है" यही उपासना सब महापुरुष ज्ञानियों को सदा से माननीय रही है शंकर भगवान ने कहा है कि "सत्यपि भेदा पगमे नाथतवाहं न मामकी नस्त्वं। समुद्रोहि तरंग क्वचन समुद्रो न तारंगः"॥

हे नाथ भेद के दूर होने पर भी मैं आप का हूं, आप मेरे नहीं, तरंग समुद्र का है समुद्र तरंग का कदापि नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभुजी भी कहते हैं।

नयनं गलदश्रु धारया।
वदनं गद्गद रुद्धयागिरा॥
पुलकैर्निचितं वपुः कदा।
तव नाम ग्रहणे भविष्यति॥

हे जगदीश! आप का नाम लेकर अश्रु धारा मेरे नेत्रों में से कब बहेगी मेरा मुख गद्गद वणी से कब रुक जावेगा मेरा शरीर कब पुलकित होगा यह सच्चे भक्तों की प्रार्थना है॥

(राम)

उपासना।

ब्रह्म दृष्टि रुत्कर्षात्।

अर्थात् प्रतीक में ब्रह्म दृष्टि हो, ब्रह्म में प्रतीक भावना मत करो। अहंगृह उपासना के सम्बन्ध में यूं लिखा है।
आत्मेति तूप गच्छन्ति ग्राहयन्ति च॥

ब्रह्ममीमांसा ४, १, ३,

अर्थात् ब्रह्म को अपना आत्मा (अपना आप) वारम्वार चिन्तन करो वेद का यही मत है और यही उपदेश। इन दोनों प्रकार की उपासना में अभिप्राय और लक्ष एक ही है, वह क्या है ?

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जालानिति शान्त उपासित्।

ठंडी छाती से अन्दर वाहर ब्रह्म ही ब्रह्म देखो॥ अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः॥

जैसा भी पुरुष का विचार और चिन्तन रहता है वैसा ही वोह अवश्य हो जाता है तो ब्रह्मचिन्तन ही क्यों न दृढ़ किया जाय। अर्थात् अपने आप को ब्रह्मरूप ही क्यों न देखते रहें। इसी पर श्रुति का वचन है।

"ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति"

अहंगृह और प्रतीक उपासना दोनों में नाम रूप संसार (बुत) को मिटाना इष्ट होता है बनाना नहीं। जल ब्रह्म है, स्थल ब्रह्म है, पवन ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, गंगा ब्रह्म है इत्यादि प्रतीक उपासना का रूपदर्शक वाक्यों में जल, पवन, आकाश आदि के साथ ब्रह्म को कहीं जोड़ना (संकलन करना) नहीं है जैसे यह सर्प काला है। इस में सर्प भी रहे है और काला भी। किन्तु यहां तो वाध समानाधिकरण है, जैसे किसी भ्रांति वाले को कहें यह सर्प रस्सी है, यहां रस्सी काले रंग की तरह सर्प के साथ समान सत्ता वाली नहीं है। किन्तु रस्सी ही है सर्प नहीं, इसी तरह सच्ची उपासना यह है कि धारा रूप जल, दृष्टि में न रहे ब्रह्मचित में समाजाये, स्पंद रूप पवन दृष्टि से गिर जाये। ब्रह्मसत्ता मात्र भान हो। प्रतिमापन उड़ जाय। चैतन्यस्वरूप भगवान की झांकी हो जैसे किसी प्रेम के मतवाले घायल ने प्यारे का प्रेम पत्र पढ़ा उस की दृष्टि तो प्यारे के स्वरूप से भर गई अब पत्र किस को दीख पड़े। गोपियां उद्धव को कहती हैं; यह पाती अब कहां रक्खें, छाती से लगाती हैं तो जल जायगी आंखों पर धरती हैं तो गल जायगी। उपासना में मगन होनेके लिये इन्द्रिय ज्ञान तो एक छेद जैसी रह जायगी। प्यारे ने चुटकी भरी चुटकी वस्तुः कोई चीज नहीं है प्यारा ही वस्तु रूप है। इसी तरह सब इन्द्रियों का ज्ञान एक ही एक प्यारे की छेड़ छाड़ रूप प्रतीत हो "आई ठुमक ठुमक लाई बुलावा श्यामका" भाई उपासना तो इसी का नाम है जिस में जुबान ने तो क्यों हिलना है शरीर की हड्डी और नाड़ी तक

के परमाणु २ हिल जायँ। ये नहीं तो आंख मून्दो नाक मून्दो, कान मून्दो, मुख मून्दो गावो चाहे चिल्लावो तुम्हारी उपासना बस एक चित्र रूप है जिस में जान नहीं बड़ा सुन्दर चित्र सही रवि वर्मा का मान लो, पर खाली तस्वीर से क्या है। पदार्थों में इस ब्रह्म दृष्टि को दृढ़ करना और विशय भावना का मिटाना रूपी उपासना, कुछ वैसा अध्यारोप कल्पना शक्ति को बदना और वर्त्तना न जान लेना जैसा सतरंज में काठ के टुकड़ों को बादशाह, वजीर हाथी, घोड़ा, प्यादा मान लेते हैं।

जल ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, अग्नि ब्रह्म है, मन ब्रह्म है, इत्यादि उपासना के रूप तो अवस्तु को मिटाकर वस्तु भवना जमाते हैं यदि यह खाली मान लेना, और कल्पना मात्र भी हो तो वैसी कल्पना है जैसे बालक गुरु जी के कहने से गुणा करने और भाग देने की रीति को मान लेता है भाग देने गुणा करने की यह विधि क्यों ऐसी है और क्यों नहीं इस रीती द्वारा उत्तर के ठीक आजाने में कारण क्या है। यह बातें तो पीछे आएंगी जब बीज गणित एलजबरा पढ़ेगा परन्तु उस गुरु की रीति पर विश्वास करने से उदाहरण सब अभी ठीक निकलने लग पड़ेंगे। पर खबरदार गुरु जी के बतायी हुयी गुरु रीति को ही और का और समझ कर मत याद करो।

प्रतिमा क्या है जिन से मान निकाला जाय मापा जाये, तोला जाये जब तोलने का बट्टा छोटा हो तो तोल का मान बड़ा होता है। जैसे तोलने का बट्टा एक पाव होने पर यदि किसी चीजका मान चार हो तो बट्टाएक छटांक होने पर मान सोलह होगा अब हिन्दू धर्म के यहां प्रतीक और प्रतीमा क्या थे। ईश्वर को तोलने का बट्टा हिन्दूधर्म में अति उच्च सूर्य चन्द्रमा रूपी प्रतीक भी है। इस से उतर कर गुरुब्राह्मण रूप है जो गरुड़रूप भी अश्वत्थ वृन्दा रूप भी कैलास गँगा रूप भी, और भी प्रतीक रूप भी और ठिगने से गोल मोल वाले पत्थर को भी प्रतिमा प्रतीक रूप स्थापित कर दिया है यह छोटे से छोटा प्रतीक क्या परमेश्वर को तुच्छ बनाने केलिये था। नहीं जी प्रतीक का छोटा करना इस लिये था कि ईश्वर भाव और ब्रह्म दृष्टी समुद्र बह निकले जब उस नन्हे से पत्थर को भी ब्रह्म देखा तो बाकी अखिल पदार्थ और समस्त जगत तो अवश्य मेव ब्रह्म रूप भान हुआ चाहिये। परन्तु जिस ने मूर्ति पूजा इस समझ से की कि यह जरासा पत्थर ही ब्रह्म है तो वह हो गया पत्थर का कीड़ा।

गुरु भक्ति।

(ले० श्रीमती सूरजदेवी।)

ईश्वरो गुरु रात्मेति, मूर्ति भेद विभागने।
व्योमवत्व्याप्तदेहाय, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

पूरण ब्रह्म परमात्मा की अद्भुत सृष्टि में अद्भुत ही लीला दिखाई देती है। इस के गुलाब में काँटा है, इस के सुख में दुःख है। जिधर देखो उधर ही विचित्र रचना हो रही है ग्रामों में नगरों में देखो क्या चहल पहल से मनुष्य मात्र अपने २ संसारिक कार्यों में व्यस्त हो रहे हैं मानो उन का और कोई कर्त्तव्य ही नहीं है। इस व्यवहार के लिये ही मानो उन सब का इस सृष्टि में प्रादुर्भाव हुआ है। अरण्य की तरफ दृष्टि उठा कर देखो वृक्ष लहलहा रहे हैं, पर्वत अपनी चोटी ऊपर उठाये सबको देख रहे हैं। मृग आनन्द से उछल कूद रहे हैं और बन चर प्राणी प्रकृति का आनन्द लूट रहे हैं। यथा समय पृथिवी भी हरी भरी प्रतीत होती है। भगवान् की अद्भुत लीला का सौन्दर्य निहार कर प्रायः सब मुग्ध हो रहे हैं। क्या संपूर्ण सृष्टि व्यवहारिक कार्यों में मस्त है? नहीं ईश की सृष्टि प्रकृति के ही विचारों में लीन रहने की अपेक्षा इस के विपरीत आत्मानुभव तथा आत्मानन्द को प्राप्त करने वाले भी हैं कोई योग साधन करते हैं कोई ज्ञान का आश्रय धारण करता है कोई अपने नवीन विचारों में ही लीन रहते हैं परन्तु इन सब से हमें क्या हमने जिस विषय को हृदय में रखकर लेखनी उठायी है उसे याद करना चाहिये मैं अपने परम पूज्य दयालु श्री सद्गुरुदेव के पवित्र भक्ति वर्द्धक चरणारविंदों में अनेक बार शीश झुका कर उन को हृदयमें स्मरण कर उन ही की महती दया से और उपदेश से जो कुछ बुद्धि में समाया है और श्रीगुरुदेव से प्राप्त स्वकीया बुद्धयानुसार उनही की परम पावनी विघ्न विनाशिनी मुक्ति प्रदायिनी सर्व सुख कारिणी गुरुभक्ति के विषय में लिखने का विचार करती हूं यद्यपि यह विषय अति गहन और गम्भीर है क्यों कि जिस विषय पर अखिल सृष्टि का कल्याण निर्भर है जिस से मनुष्य इस अथाह संसार सागर से पार हो कर अपने अचल पूर्व पद पर स्थापित हो सक्ता है। अधिक क्या जो जो मनुष्य का उत्तमोत्तम और मुख्य उद्देश्य है वह "गुरु भक्ति" से ही सिद्ध होता है मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार इस का विवरण निचे लिखूंगी इस के द्वारा ही हम अपने रच, यिता तथा पालन कर्त्ता परमात्मा के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करने वाले बनते हैं मनुष्य को

प्रथम अपना उद्देश्य जानना चाहिये। तत्प. श्चात् उस उद्देश्य के पूर्ति कारक साधन को विचारना चाहिये। श्री गुरुमुख से उपदेश तथा दृष्टान्तों द्वारा तथा पुस्तावलोकन द्वारा यही ज्ञात हुआ है कि मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य भग. वत्प्राप्ति है। क्यों कि देखिये सब मनुष्यों की यह हार्दिक भावना है कि हमें "सुख" और 'शान्ति, किसी भांति प्राप्त हो और वह क्षणिक न हो तथा अटल हो और मनुष्य 'सुख शान्ति, प्राप्त्यर्थ नाना भांति सांसारिक क्लेश सहता है यथा धन, सुत, दारा, द्वारा परन्तु अपनी कामना को पूर्णतया सफल नहीं करसक्ता और विचारने से ज्ञात होता है कि प्राकृतिक वस्तुओं में अनन्त सुख व शान्ती नहीं है। वह कहाँ है? वह सुख, शान्ती, परमात्मा में है क्यों कि पर मात्मा सुखस्वरूप शान्त स्वरूप है भगवत् को प्राप्त करके ही हम अपने हृदयकी इच्छाको पूर्ण कर सकते हैं और यही मनुष्य मात्र का इस सृष्टि में मनुष्य पना है क्योंकि मनुष्य शरीर में ही हम अपनी अभिलाषित कामनाओं को पूरा सकते हैं हमारी मुख्य कामन भगवत्प्राप्ति है यहही मुख्य कर्तव्य है यथाः—

मनुज देह प्रापत भयी, सब प्रापत को मूल।
या में हरी प्रापत नहीं, सब प्रापत पर धूल॥

अतः हमें अब इस की प्राप्ति के साधन का अन्वेषण करना चाहिये। साधन है मुख्य और श्रेष्ठ गुरुभक्ति यथा जैसाकि सहजो बाईने कहा है।

सहजो कारज जगत् के,
गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलें,
समझ देख मन माहिं।

देखिये संसारिक कार्य भी गुरु बिना सम्यक प्रकार से सिद्ध नहीं होते तो भला भगवत्प्राप्ति क्योंकर होसकती। कुछ ध्यान हम संसारिक कार्यों पर देते हैं देखिये कोई भी मनुष्य बच पन से कोई काम सीखकर नहीं आता जैसे वह अपने माता पिता आचार्य से सीखता है वही अनुकरण करता है कला कौशल, शिल्पकारी, जीवन सम्बन्धी कार्य मनुष्य बिना गुरु के नहीं कर सकते और न वह सिद्ध ही होता है यथाः— बिन गुरु माला फेरते, गुरु बिन देते दान गुरु बिन दान हराम है, जा पूछो वेद पुरान और भी कहा है

गुरु बिन भवनिधि तरे न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई॥
गुरु बिन ब्रह्म नहीं नर पावे।
गुरु बिन तत्व कौन दर्शावे॥

अपूर्ण।

तुम सुनियो सन्त सुजान गुरां संग मेला है ॥ टेक ॥
प्रेम नगर की औघट घाटी, निर्भय पन्थ दुहेला है ॥ १ ॥
लोक लाज कुल की मर्यादा, शीश दिया सोई चेला है ॥ २ ॥
उलटी पवन शिखर धुनि लागी, धर रहा ध्यान अकेला है ॥ ३ ॥
पाप पुण्य से न्यारा रहता, सतगुरु आप नहेला है ॥ ४ ॥
पीसा सन्त कहैं सुनों भाई साधो, बाहर भीतर खेला है ॥ ५ ॥

पाठकों के प्रति निवेदन

प्रिय पाठक ! "भक्ति" का यह प्रथमाङ्क आप लोगों की सेवा में उपस्थित है। इसका मुख्योद्देश्य जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करना है। इसी भाव को लेकर यह पत्र सर्व साधारण के लाभार्थ आरम्भ किया गया है। इस हेतु से ग्राहकों को भी ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह अधिक से अधिक संख्या में इस के ग्राहक बन सकें। जिससे यह पत्र आप लोगों की भली प्रकार से सेवा करसकें। नमूने का यह प्रथमाङ्क आप की सेवा में अमूल्य ही भेजा जाता है। दूसरा अङ्क वी० पी० पी० द्वारा भेजा जावेगा। जिन महाशयों को ग्राहक होना अस्वीकार हो जिसकी हमें किंचित भी आशा नहीं है (क्योंकि इस के लेख भगवद्भक्ति तथा धार्मिक भावों से पूर्ण शास्त्रों के प्रमाणों सहित होंगे) कृपया पहली नोम्बर के पूर्व कार्यालय में सूचना भेज दें। जिससे आगामी अङ्क वृथा उनकी सेवा में भेज कर कार्यालय वी० पी० के खर्च से हानि न उठावे।

भवदीय

मैनेजर

विना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी ।

भाषाफक्किका प्रकाश ।

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धन्त कौमुदी की गूढ फक्किओं को समझाया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इससे विद्यार्थी लघु पढ़कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकता है। मूल्य केवल ॥)

ज्ञान धर्मोपदेश ।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संगृह है। मूल्य =)॥

शब्द सदाचार संग्रह ।

इस में कवीर सूरदास आदि माहात्माओं की वाणियों का संगृह है। मूल्य =)।

वेदोपनिषद् ।

इस पुस्तक में ईश, कठ, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संगृह है। मूल्य ।=)

अष्टोत्तर मन्त्रमाला ।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संगृह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य =)॥

भगवद्गीता का संस्कृत तथा भाषा टीका छप रहा है। मूल्य ॥=)

मैनेजर भक्ति प्रेस

भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा (रेवाड़ी)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी ।